प्रवेशांक

निमित्त

विश्वविद्यालय परिसर की रचनात्मक अभिव्यक्ति का समवेत प्रयास

त्रैमासिक ई-पत्रिका

निमित्त मात्रं भव!

ज्ञान, शांति, मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)

संरक्षक

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

कुलपति

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442005 (महाराष्ट्र)

परामर्श

प्रो. चित्तरंजन मिश्र

प्रतिकुलपति

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442005 (महाराष्ट्र)

संयोजन-संपादन

डॉ. शंभू जोशी

सहायक प्रोफेसर

गिरीश चंद्र पाण्डेय

प्रभारी, लीला

आवरण एवं साज-सज्जा

उमा शंकर

सहायक

© संबंधितलेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित

प्रकाशक

कुलसचिव

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)

नोट- प्रकाशित रचनाओं की रीतिनीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संयोजक-संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

विरासत	
उरूज	पांडेय बेचेन शर्मा उग्र
आलेख	
गिरीश्वर मिश्र	भाषा की सत्ता
प्रज्ञा सुरेशराव राऊळ	महाराष्ट्र से अंतरराष्ट्रीय प्रवासन : कारण और प्रभाव
धनजी प्रसाद एवं प्रवीण कुमार पाण्डेय	हिंदी में विभक्ति और परसर्ग
शुभांगी महादेव शंभरकर	जापानी बौद्ध भिक्षु फ़ुजीई गुरुजी की गाँधी जी से प्रथम भेंट का वृतांत
गजानन निलामे	दोहरे दमन का संयुक्त अवचेतन : भारतीय दलित
अरुण प्रताप सिंह	योग और स्वास्थ्य
मदन सोनी	शब्द : सत्ता और स्वाधीनता
ऋषभ कुमार मिश्र	शिक्षा विमर्श का साहित्यिक कोण
सुरजीत कुमार सिंह	सम्राट अशोक और कलिंग का युद्ध: बौद्ध धम्म स्वीकार करना
सतीश पावडे	गांधी, गांधी विचार और हिंदी-मराठी नाटक
कविताएँ	
डी.एन. प्रसाद	मौसम बदल गया
मुबारक मुल्ला	विनय
अनुराग कुमार पाण्डेय	दया
मुन्ना लाल गुप्ता	प्राकृतिक त्रासदी: एक सच
	नारी
रजनीश कुमार अम्बेडकर	स्त्री शिक्षा की ज्योति
अमरेन्द्र कुमार शर्मा	क्रम में नहीं है जो
रेणु कुमारी	माँ, पढ़ाई .... शांति .....
कहानियाँ	
मेहराज अली	बाँस का पेड़
जुगल किशोर चौधरी	एहसास
कुंदन लाल चौधरी	आस्था और उन्माद
समीक्षा	
अवंतिका शुक्ला	कश्मीरी औरत : काश, पूछो, कि मुद्दा क्या है
श्रीकांत बोरकर	अंबेडकरवादी स्त्री-चिंतन
रिपोर्टिंग	
बिमलेश कुमार	मातृभूमि से जुड़कर गदगद हुए प्रवासी भारतीय

उरूज

पांडेय बेचन शर्मा उग्र

शहर के मशहूर एम.एल.ए. केवलचंद की माता दयावतीदेवी के देहांत के तेरहवें दिन की बात। बात, दिन तो क्या, शाम की है, और जरा प्राइवेट नेचर की है।

शाम को मातम-पुर्सी के लिए मिलने को शहर का वह बनिया महाजन आया, खुर्राट लाला घीसालाल - घीसालाल-घनघोरलाल-फर्म का मशहूर मालिक। मशहूर यों कि घीसालाल जिस तरह भी मिले, पैसे कमानेवाला। पैसे के लिए मक्कारी, बेईमानी, जालसाजी आदि को घीसालाल 'बिजनेस-सीक्रेट' जाननेवाला।

सारी जिंदगी घीसालाल का बाप घनघोरलाल ब्रिटिश गर्वनमेंट के उन फौलादी पंजों में पॉलिश लगाता रहा, जिनसे भारतवर्ष का दम घोंटा जा रहा था। सन् 44-47 तक घीसालाल भी अपने स्वर्गीय बाप की लीक पर ही चलता रहा। फर्क इतना कि घनघोरलाल अगर कच्छप की चाल चलता था, तो घीसालाल साँप की तरह। दोनों में बैलगाड़ी और रेलगाड़ी का अंतर - घनघोरलाल अंग्रेज को भ्रष्ट करता था, घीसालाल अंगरेज को भगानेवालों को भ्रष्ट करनेवाला। शहर में बड़ी अफवाह कि उसने एम.एल.ए. केवलचंद को भी 'तर माल' पहुँचाकर बहुत-से परमिट, लाइसेंस और ठेके प्राप्त किए हैं।

'माताजी को कोई रोग नहीं, बीमारी नहीं,' एकांत में केवलचंद से बातें करते हुए खुशामदी स्वर में घीसालाल ने पूछा - 'मेरी समझ में नहीं आता कि यों अचानक उनका बैकुंठ-गमन हो कैसे गया?'

'रोज ही यही एक प्रश्न आप करते हैं घीसालाल जी, और मैं मन मसोसकर चुप रह जाता हूँ, पर आज उत्तर देने को जी चाहता है।'

इधर-उधर देख और अच्छी तरह से समझकर कि कोई नौकर भी उसकी बात सुनने को नजदीक नहीं, एम.एल.ए. केवलचंद ने कहा - 'तेरह दिन पहले आपसे जो पचास हजार रुपए मुझे मिले, वे फले नहीं! तेरह दिनों से मैं इसी उधेड़-बुन में हूँ कि क्या अम्मा का शरीर उन रुपयों के कारण ही छूट गया? क्या ये रुपए उत्थान नहीं, पतन के अग्रदूत, उरूज नहीं, जवाल की राह पर झाड़ लगानेवाले हैं?'

'मैं समझा नहीं महाराज!' पुनः चापलूसी की घीसालाल ने- 'मैंने तो गुरुमंत्र यही माना है कि फायदे में आती हुई लक्ष्मीमें, फिर वह लाभ चाहे जैसा होता हो, कोई भी पाप नहीं; जरा भी। यहाँ रुपए अंगरेज ले जाता, तो पुण्य होता, और आप की जेब में गए, तो पाप हो गया? हिः! मैं तो सौभाग्य मानता हूँ। और, अंगरेज की सेवा एक करता था - आधे दिल से - तो आपकी सौ करना चाहता हूँ। सौ जान से। आप स्वदेशी, आप तपस्वी, आपको रुपए देना और मंदिर में चढ़ाना बराबर, मंदिर में किसी तरह का भी रुपया चढ़ाया जा सकता है। मगर उन रुपयों से माताजी के देहांत का संबंध क्योंकर हो सकता है!'

'आप मेरी माँ को निकट से जानते नहीं घीसालालजी, दया और त्याग की तो वह मूर्ति थीं। उनके उठ जाने से मेरे जीवन में जो अवकाश उत्पन्न हो गया है, उसकी पूर्ति इस जन्म में संभव नहीं।'

'माँएँ मोही होती हैं।' घीसालाल ने कहा - 'मेरी माता कपूराबाई आखिरी दम तक भगवान से यही प्रार्थना करती गईं कि मेरे घर में लक्ष्मी टाँग तोड़कर बैठी रहें। और साहब, उनके आशीर्वाद में कितना बल! जिस साल वह मरीं, उसके दूसरे साल ही बंगाल में अकाल पड़ा, पर कलकत्ते की घीसालाल-घनघोरलाल-फर्म ने बंगाल के बाहर पचासगुना अधिक दाम पर कई लाख मन चावल खपाकर 50 लाख रुपये पैदा किए!'

'मेरी माँ तो बड़ी धरमात्मा,' केवलचंद ने भावुकता से भरकर कहा - 'दयावती उनका नाम जरूरत से ज्यादा सार्थक। जीवन-भर उनकी बड़ी-बड़ी आँखें जीवन-भरी रहीं, याने सहज सजल। माताजी का चेहरा हमेशा ऐसा दिखता, गोया प्रसन्नता से रोकर अभी उठी हों। पिताजी की डॉक्टरी से बड़ी अच्छी आमदनी, पर वह आमदनी से इतना खुश नहीं, जितना इस बात से कि पिताजी आर्य-समाज के भारत-विख्यात सुधारक नेता थे। मैं अम्मा के मुँह से सुनी उनकी पसंद की बात बतलाऊँ, तो स्पष्ट हो जाएगा कि मेरी माँ किस बुलंद मिजाज की थीं।

'मेरी डॉक्टरी पिताजी से भी बढ़कर चली! रुपये बरसने लगे। पर इससे अम्मा खुश नहीं हुईं। सन् 42 में जब मैं, ब्रिटिश गवर्नमेंट के विरुद्ध बगावत कर जेल में जाने के बाद, 60 दिन अनशन करने के बाद अधमरा-सा मरने के लिए छूटकर घर लाया गया, और मुझे देखने के लिए सारा शहर उमड़ पड़ा, मसजिदों और मंदिरों में दुआएँ-प्रार्थनाएँ होने लगीं, तब वह मेरे पास आईं। उन्होंने कहा - 11 रुपए हैं? चाहिए।'

'रुपए क्या होंगे अम्मा!' उन्हें दस और एक एक का नोट देते हुए मैंने कहा।

'हनुमानजी को लड्डू चढ़ाकर बच्चों को बाँटूँगी।'

'क्यों?'

'मैंने मानता की थी तेरे लिए।'

'मेरे लिए क्यों? कब?'

'जब तू पेट में भी नहीं आया था।'

'ऐसी मेरी अम्मा, जिसने मेरे पेट में आने से पहले ही मनौती मान रखी थी! 'क्या मानता मानी थी माँ?'

'उसका एक किस्सा है!' अम्मा ने पुलकित होकर सुनाया - 'तेरे पिता आर्य-समाज के बड़े लीडर, बड़े ही कट्टर सुधारक। अपनी जिंदगी में उन्होंने 12 सौ मुसलमानों को शुद्ध कर हिंदूधर्म में मिलाया था। इससे कुढ़कर कानपुर में एक पागल मुसलमान ने उन पर छुरे से17 वार किए। उस वक्त वह न रोकते, तो कानपुर में खून की नदी बह गई होती, और मरहम-पट्टी से सजकर जब वह घर आए, तो सारा शहर उन्हें देखने को उमड़ पड़ा। जिधर सुना, उधर प्रशंसा तेरे पिता की। और, मैं आर्य-समाज में नहीं, मैं तो पुराने ढंग की सीधी औरत, पर तेरे पिता का वह गौरव देखकर मेरा हृदय गर्व से फूल आया। मैंने आँचल पसारकर अपने इष्टदेव हनुमान का ध्यान कर मनौती मानी कि हे पवनपूत, रामदूत! जिस तरह आज मेरे पतिदेव का उरूज है, वैसे ही जिस दिन मैं अपने पुत्र का उरूज देखूँगी, उस दिन आपको बेसन के लड्डू और चोखे चने चढ़ाऊँगी। वह दिन आज हनुमानजी ने दिखा दिया, सो लड्डू-चने चढ़ाकर बच्चों में बाँटूँगी।'

'बड़े ही वीर विचारों की आपकी माता थीं।' घीसालाल ने गंभीरता से कहा - 'मगर उन रुपयों की असलियत का भेद उन्हें बतलाया ही आपने क्यों, उनका स्वभाव जानते हुए?'

'मैंने नहीं बतलाया उन्हें।' केवलचंद ने कहा - 'मैं अपनी पत्नी के सामने सारी रकम रखकर कह रहा था कि उससे एक बढ़िया बँगला बनवाना है, उसी वक्त कहीं से अम्माजी वहाँ आ गईं। 'बाबू,' उन्होंने बचपन के नाम से मुझे संबोधित कर पूछा- 'इतने सारे रुपए कहाँ से आए?'

मैंने बातें बनाई बूढ़ी के सामने - 'अम्माजी, लक्ष्मी को जब आना होता है, तब नारियल की खोपड़ी के अंदर पानी की तरह जाने कैसे आ जाती है।'

'जाने कैसे आई लक्ष्मी को गृह-लक्ष्मी बनाना पुराने जमाने से पाप माना जाता है - डॉक्टरी में तो इतने रुपए मिलते मैंने कभी नहीं देखा। ये आए कहाँ से?'

'मैं एम.एल.ए. हो गया हूँ न; शहर-भर के व्यापारियों की नकेल मेरे हाथ में आ गई है। अब मैं गरीब नहीं रह सकता। यह तो आधा ही लाख है, अभी तो लाखों और आएँगे।'

जैसे वह समझ गई कि रुपया नाजायज तरीके से हासिल किया हुआ है। उन्होंने आर्डर दिया - 'उसी वक्त जिसकी चीज, उसके हवाले की जाय। ऐसा धन घर में रखना पेटियों में साँप पालने की तरह है।'

इससे नया बँगला बनेगा अम्मा! यह पाप की नहीं, तेज की कमाई है! इतने दिनों तक देश के लिए तप किया है, फिर फल नहीं मिलेगा? तुम्हारा धर्म-ज्ञान दकियानूस, जो केवल त्यागना, देना ही जानता है, दुनिया का काम त्याग और ग्रहण, दोनों में संतुलन रखने से ठीक चलता है। एम.एल.ए. हुए हैं दरिद्र की तरह पाँव अटकाते रहेंगे, तो कुछ भी नहीं होने का। और, बँगला और मोटर हो जाएगी, तो आगे मिनिस्ट्री के चांस हैं।

'सेवा, त्याग और तप से जैसे एम.एल.ए. बना, क्या वैसे ही सेवा, त्याग और तप से मिनिस्टर भी नहीं बन सकता? पढ़-लिखकर तूने समझा क्या! मैं तो बिना पढ़े-लिखे जानती हूँ कि केवल राम-राम करने से आदमी इंद्र-पद भी पा सकता है।' अम्मा ने मेरे लोभ के विरोध में तीक्ष्ण स्वर में कहा।

'धीरे बोलो अम्मा, चिल्लाती क्यों हो?' रुखाई से मेरे मुँह से निकला - 'मैं एम.एल.ए. हूँ, मेरी भी इज्जत है। कोई सुने, तो तिल का ताड़ राई का पहाड़ खड़ा हो जाय। आज की राजनीति में पाप करना बुरा नहीं, पकड़ा जाना-मात्र बुरा है। बुराई बुरी नहीं बदनामी बुरी है। आप लोग पुराने जमाने की राम-रट लगाएँ, पर राम-नाम लेने से इंद्रासन तब मिलता है, जब गांधीजी की तरह कोई गोली खाकर पहले जान दे दे।'

'इस पर अम्मा चुप ही रहीं। एक बार मेरी ओर बड़ी-बड़ी आँखों से यों देखकर, जिसका अर्थ यह कि - 'अच्छा रे, मेरे पेट का पैदा मुझे ही ज्ञान सिखाने चला!' और, वह तेजी से हमारे कमरे के बाहर हो गईं । रुपए का मोह कहाँ था? मेरी मूर्खता, मैंने अम्मा की नाराजी पर ध्यान नहीं दिया, और दूसरे कामों के सिलसिले में शहर चला गया। लौटा भी जरा देर से, सवा बारह बजे।

'और, देखता क्या हूँ कि अम्मा चौकी पर तड़प रही हैं, सारा घर सेवा में लगा है। स्त्री से अलग बुलाकर मैंने पूछा- 'क्या हुआ अम्माजी को? कब से यह हालत है उनकी!'

'यह हालत तो अभी 15-20 मिनट से'; स्त्री ने बतलाया - 'पर हमारे कमरे से बाहर निकलते ही, तुम्हारे बाहर जाते ही, वह बहुत ही बेकल बन गई थीं।'

'कुछ कह रही थीं।'

'आदमी से कुछ भी नहीं, वह घर के पूजा-गृह में जाकर देवता के सामने हिचक-हिचककर, 'पुक्काफाड़' कर रोने और सिर पीटने लगीं।

'क्या!'

'उन्होंने कहा - 'हे प्रभो! क्या यही दिन देखने के लिए मैंने तुम्हारी इतनी सेवा की थी? पर मैं ही पापिनी हूँ भगवान! तुम्हारा कोई दोष नहीं। अपराध मेरा, मैंने माना। लेकिन अब तो दया करो नाथ! अब तो दया करो। जब माता-पिता की नीयत और बुद्धि पर लड़के संदेह करने लगें तब भाग्यवान सो, जिसे भगवान - नहीं तोय मराज ही सही - बुला लें।'

'पत्नी जिस ठंडे दिल से कथा सुना रही थी, मुझे अच्छा नहीं लगा, या यों कहिए कि अपनी कमजोरी का परिणाम सामने आते देख गुस्सा आया औरत पर। मैंने पूछा- 'वह सिर पीटती रहीं, और तुम सिनेमा के तमाशे देखती रही - ऐं?'

'मैं करती क्या, उन्होंने अंदर से कुंडी लगा रक्खी थी। तब से बराबर मैं बाहर से 'माँजी! माँजी!' पुकारती रही। थोड़ी देर पहले दरवाजा खोलकर वह बाहर आई। मैंने देखा -ऐसा रूप तो मैंने उनका कभी देखा ही नहीं था - साक्षात भगवती, चेहरे से जैसे लपट निकल रही थी। 'बहू!' उन्होंने कहा - 'मेरी तबियत अच्छी नहीं। देह जैसे ऐंठी जा रही है। दिल जैसे डूबा जा रहा है। वे रुपए घर में हैं न?' उन्होंने कठोर दृष्टि से देखकर पूछा। मैं चुप रही। और वह कटे रूख की तरह गिर पड़ीं। हाथ-पाँव ऐंठने लगे। घर के सब लोगों ने मिलकर उन्हें चौकी पर लिटाया ही था कि तुम आए। मगर बातें फिर होंगी, पहले कोई डॉक्टर-वैद्य...।'

इसी समय चौकी के पास से घर के दूसरे लोग चीख-चिल्ला पड़े - 'दौड़ो, दौड़ो, अम्माजी...।' और जब तक हम पहुँचे, तब तक वह मर्त्यलोक का वातावरण छोड़ दिव्य-लोक की सीमा में पहुँच चुकी थीं।

'भाग्यवान थीं माताजी!' घीसालाल ने किस्सा कोताह करने के इरादे से कहा -'अनायास मरण बड़ा उत्तम माना जाता है। फिर अब उन्हें देखना ही क्या था। पति का उरूज देखा, उससे भी बढ़कर पुत्र का उरूज।'

'मगर सेठजी!' केवलचंद के मुँह से भावावेश में सत्य निकल पड़ा - 'पति का उरूज देखने से तो अम्मा को एक नई जिंदगी का संदेश मिला था, और पुत्र का उरूज देखने से दाहन मरण का। तभी से बराबर यही विचार मेरे दिमाग में प्रेत-तांडव कर रहा है कि क्या अम्मा की मृत्यु का कारण वह रकम ही नहीं है? अगर है, तो इस हत्यारी संपत्ति से सिवा अपमान, मृत्यु और नरक के, दूसरा होगा क्या?'

'अपना नया बँगला जो बनेगा, उसका नाम माताजी के नाम पर हो - 'दयावती-निवास' या 'दया-धाम'। राजनीति निपुण होकर भी आप कहाँ के भावुक बन चले। अजी, माताजी ने आपके उरूज - सूर्योदय की हलकी लाली-भर देखी थी, पौ के तो अब बारह होनेवाले हैं। प्रकाश तो अब फूटनेवाला है। पचास हजार - भैयाजी, वर्ल्ड-वार के बाद पचास हजार तो चमार-सियार के पास भी हो गए हैं आजकल। हम-आप-जैसे गृहस्थों के पास दस-पाँच लाख रुपए भी अगर नहीं हुए तो सिवा रोटी-कपड़े के ऊँचे विचार सूझेंगे कहाँ से?'

'ऊँचे विचार? दस-पाँच लाख? विचारों से लाखों का क्या संबंध सेठजी?'

'बहुत।' घीसालाल ने सुनाया - 'आप जैसे बुद्धिमान आदमी को बतलाना कि यह आर्थिक युग है, न कि आध्यात्मिक, धृष्टता होगी। आप, क्षमा करें, एम.एल.ए. बावन गंडे होंगे, पर पूछ उन्हीं की है, उरूज उन्हीं का है, जिनके पास चकाचक माल है। मैं झूठ कहता हूँ?'

और देश-भक्त एम.एल.ए. चुप रहा, पर उसके चेहरे पर यही भाव कि मालदार आदमी तथा खूबसूरत माशूक के मुँह से झूठ भी सच मालूम पड़त है। बकौल उस्ताद 'गालिब' -

'कहा तुमने कि क्यों हो गैर से मिलने में रुसवाई?
बजा कहते हो, सच कहते हो, फिर कहियो कि हाँ, क्यों हो?'

(हिंदीसमयडॉटकॉम से साभार)

(1900-1967)

मुख्य कृतियाँ

उपन्यास : चंद हसीनों के खतूत, दिल्ली का दलाल, बुधुवा की बेटी, शराबी, घंटा, सरकार तुम्हारी आँखों में, कढ़ी में कोयला, जीजीजी, फागुन के दिन चार, जूहू

नाटक : महात्मा ईसा, चुंबन, गंगा का बेटा, आवास, अन्नदाता माधव महाराज महान

कहानी : उग्र की श्रेष्ठ कहानियाँ

कविता : ध्रुवचरित

आलोचना : तुलसीदास आदि अनेक आलोचनात्मक निबंध

आत्मकथा : अपनी खबर

अन्य : गालिब : उग्र, उग्र का परिशिष्ट (संपादक : भवदेव पांडेय)

संपादन : भूत, उग्र (मासिक पत्रिका), मतवाला, संग्राम, हिंदी पंच, वीणा, विक्रम आदि कई पत्रिकाओं के संपादन से समयसमय पर जुड़े रहे, स्वदेश (दशहरा अंक का संपादन)

भाषा की सत्ता

गिरीश्वर मिश्र

भाषा भी एक व्यवहार है, एक केंद्रीय व्यवहार जो हमारी दुनिया में हर कहीं व्याप्त है और सभी को प्रभावित करता है. भाषा में हम अपने को व्यक्त करते हैं और दूसरों के साथ जुड़ पाते हैं. हमारी परम्परा में वाणी और शब्द की बड़ी महिमा है. छान्दोग्योपनिषद के अनुसार 'यदि वाणी का अस्तित्व न होता तो धर्म और अधर्म का, सत्य और असत्य का, साधु और असाधु का, प्रिय और अप्रिय का ज्ञान नहीं हो सकता. केवल वाणी के माध्यम से ही इनका ज्ञान होता है. इसलिए वाणी की उपासना करो'. हम भाषा में जीते हैं और भाषा से हमारी अस्मिता का बोध उपजता है, हमारी पहचान बनती है, भाषा सोचने लिए, दुनिया को समझने के लिए कोटियाँ प्रदान करती है. उनके सहारे हम दुनिया देखते बूझते हैं और स्वयं को व्यक्त करते हैं .वैसे भी हम भाषा का उपयोग केवल वर्णन मात्र ही नहीं करते, उससे आगे बढ़ कर कल्पना करने और सृजन के लिए सशक्त माध्यम के रूप में भी भाषा का उपयोग करते हैं. अपने ज्ञान और अनुभव का साझा करते हैं।

वाचिक संकेत और शरीर-भाषा का उपयोग करते हुए हम अपने मन की बात कहते हैं और अपने को अभिव्यक्त करते हैं. वैसे देखने और कहने का मेल बड़ा कठिन है. गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़ा सोच कर लिखा था *'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'* भाषा के पास आंख नहीं और आँख के पास भाषा नहीं. ऐसे में द्विवेदी जी के अनुभवहीन अनामदास की तरह 'पद' और 'पदार्थ' का जोड़ बैठाना कठिन हो जाता है. व्यक्ति अपनी संस्कृति से शब्द ग्रहण करता है और उनमें अर्थों का आधान करता है.

भारतीय चिंतन में वाणी पवित्र है, शब्द अक्षर हैं और अक्षर ब्रह्म है. 'वेद' तो अपौरुषेय माने गए और वाणी सब कुछ संभव बनाती है. क्या बोलें ? कैसे बोलें? कब बोलें ? इन प्रश्नों को ले कर काफी कुछ सोचा विचारा गया है. भाषा सोचने और कर्म में प्रवृत्त करने और चेष्टा की प्रवृत्ति जगाती है. वह ज्ञान के संग्रह और वृद्धि का माध्यम तो है ही वह जैसा कि पहले कहा गया है एक विशिष्ट व्यवहार भी है. शब्द का उचित प्रयोग कार्य सिद्ध करता है और गलत प्रयोग अनर्थकारी हो जाता है. शब्द स्मृतियों को जगाते हैं और उनसे जुड़ी भावनाओं को पुनर्जीवित करते हैं. भाषा का उपयोग करना अद्भुत कला भी है. भाषा का अनुशासन जो साध ले उसके लिए सब कुछ संभव हो जाता है. भाषा में 'कहना' भी कई तरह का होता है – खुला, अधखुला और अनकहा. अलंकारों को अपना कर हम बोलने की कई तरह की शैलियां अपनाते हैं

भाषाओं की परिवेशगत विशिष्टता और साहित्यपरम्परा में वैविध्य होने पर भी भारतीय मनीषा की समग्र अभिव्यक्ति में एक अंतर्व्यापी सांस्कृतिक सूत्र भी झलकता है. इसका दर्शन हमें भक्ति साहित्य में बड़े ही प्रखर रूप में होता है. बंगला के चंडीदास, गुजराती के नरसी मेहता, मराठी के संत ज्ञानेश्वर, तमिल के कंबन् आलवार की आंडाल, तेलुगु के पोतन, मलयालम के तुंजन, असमिया के माधव कन्दली, कश्मीरी के नुन्द ऋषि, और हिन्दी के कबीर, दादू, और रैदास सब में यह भाव व्याप्त है. सचमुच हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में हृदय की भाषा भक्ति में निखरी और हमें उत्कृष्ट साहित्य का उपहार दिया. उसने भावात्मक एकता और पारस्परिक सौहार्द को पुष्ट किया है. महाकवि सुब्रह्मणय भारती सही कहा था 'भारत माता भले ही अठारह भाषाएँ बोलती हों तो भी उसकी चिंतन प्रक्रिया एक ही है'.

भारत वस्तुतः प्रकृति की एक अनोखी भाषा-प्रयोगशाला है. इसमें अधिकांशतः बहु भाषाभाषी लोग रहते हैं. भाषावैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी एक भाषा समूह का नाम है. सूर, तुलसी, जायसी, मीरा जैसे रचनाकारों के बिना हिन्दी की कल्पना नहीं की जा सकती. ये सभी हिन्दी के हैं और इनकी विविधता हिन्दी का विशिष्टता है. मां भारती से जन्मी, भगिनी भाषाओं से हिन्दी का बड़ा गहरा रिश्ता है. भाषा सबको जोड़ती है पर यदि उसका अविवेकपूर्ण प्रयोग हो तो उससे न केवल द्वेष फैलता है बल्कि उसका उपयोग करने वालों की बौद्धिक क्षमता और सर्जना-शक्ति भी कुंठित हो जाती है. आज हिन्दी भारत के अनेक क्षेत्रों में संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त है. उसके विरोध के स्वर भी यदा-कदा उठते रहे हैं पर यह भी एक निर्विवाद तथ्य है कि भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान तमाम गैर हिन्दी क्षेत्रों के लोग जिनमें महात्मा गांधी, महर्षि दयानंद, क्षितिमोहन सेन, शारदा चरण मित्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, चक्रवर्ती राज गोपालाचारी और मोटटूरी सत्यनारायण आदि ने खुले मन से भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रख कर हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दिया. परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ उसेआधिकारिक रूप से राजभाषा या कहें अनुवाद की भाषा बना दिया गया. उसे अपरिपक्व मान सहायक राज भाषा अंग्रेजी का वही ऊंचा ओहदा बरकरार रखा गया जो अंग्रेजी राज में था. हिन्दी को उसका स्थान लेने का प्रश्न हाशिए पर चला गया. अंग्रेजी ही वास्तविक राज भाषा बनी रही. देश के भाषा आधारित बटवारे के पीछे यह भाव था कि सभी भाषाएँ फलें फूलें और हिन्दी उन्हें जोड़े. पर स्थिति ने विकृत रूप लिया और अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ता गया और भारतीय भाषाएँ दुर्बल होती गईं .

भारत की भाषाओं का स्वरूप विशिष्ट प्रकार का है. कुछ भाषावैज्ञानिक यह मानते हैं कि पूरा भारत एक भाषिक क्षेत्र है. ऐसा सोचने का आधार यह अद्भुत तथ्य है कि भारोपीय परिवार की कई भारतीय भाषाएँ अपने परिवार की भाषाओं से तो भिन्न हैं पर यहीं की अन्य भाषा-परिवारों की कुछ भाषाओं के निकट हैं. उदाहरण के लिए 'हिन्दी', 'तमिल' और 'मुंडा' भाषाओं की आतंरिक समानता विलक्षण है. यह बात कहीं गहरी सामाजिक-सांस्कृतिक एकात्मकता को द्योतित करती है. इन भाषाओं में ध्वनि् शब्द, वाक्य तथा लिपि इन सब दृष्टियों से समानता दिखती है. यह भी ध्यान देने की बात है कि सभी भारतीय भाषाओं की ध्वन्यात्मक व्यवस्था लगभग एक जैसी ही है. भारतीय आर्य भाषा और द्रविण परिवार की भाषाओं का वर्णमाला क्रम एक ही तरह का है. उदाहरणार्थ देवनागरी और तमिल की वर्णमाला देखें तो उनमें व्यंजनों का क्रम एक सा दिखता है. ऐसे ही हिन्दी की वाक्य रचना में कर्ता–कर्म-क्रिया की व्यवस्था मिलती है जो आर्य, द्रविड़ और मुंडा

इन सभी भारतीय भाषाओं में दृष्टिगत होती है. ऐसे ही क्रिया रचना में हिन्दी में मुख्य वाचक पद पहले आता है और सहायक क्रिया बाद में. कमोबेश यही रूप सभी भारतीय भाषाओं के व्यवहार में प्राप्त होता है.

हिन्दी का शब्द-भण्डार मुख्यतः भारतीय आर्यभाषा का शब्द भण्डार है. ये शब्द संस्कृत से तो आए ही, वहां से पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से होकर भी हिन्दी और अन्य भाषाओं में गए. इनमें तद्भव और देशज दोनों ही तरह के शब्द शामिल हैं. हिन्दी ने अनेक भारतीय भाषाओं से शब्द लिए हैं. हिन्दी का शब्द जगत बहुतेरी भाषाओं के शब्दों को समोए हुए है. इसमें जहां अरबी मूल का 'असर', 'किताब', और 'मालूम' है तो फारसी शब्द 'चश्मा', 'औरत', और 'कालीन' भी है और तुर्की शब्द जैसे 'चाकू', 'दरोगा', और 'चोगा' भी शामिल हैं, अंग्रेजी का 'स्टेशन', 'रेल', 'कोट', 'क्लर्क' आदि भी हिन्दी में सम्मिलित हैं. इन सबका अब धड़ल्ले से उपयोग में आते हैं. एक अखिल भारतीय शब्द संपदा भी है जो भारतीय भाषाओं में चारों ओर प्रचलित लगती है.

यह भी गौरतलब है कि भारतीय भाषाओं में कश्मीरी, सिन्धी और उर्दू को छोड़ जो फारसी लिपि पर आधारित हैं, कुल नौ लिपियाँ प्रयोग में दिखती हैं. ये सब की सब मूलतः ब्राह्मी लिपि से उद्भूत हैं. इसका एक परिणाम यह है कि इनमें सम्मिलित वर्णों में समानता है. हिन्दी, मराठी, तथा संस्कृत की लिपि देवनागरी है. तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, पंजाबी और बंगला की अपनी अलग-अलग लिपियां हैं. भाषाओं की निजता और वैयक्तिकता तो है पर इनमें समानता का भी व्यापक आधार है.

आज हिन्दी एक व्यापक भाषा है जिसका प्रयोग भारत के ग्यारह प्रदेशों में होता है. इसका उपयोग करने वाली जनसंख्या भारत की लगभग ४२ प्रतिशत से भी अधिक है. इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण है कि हिंदी क्षेत्रीयता के भाव से ऊपर उठ कर पूरे देश से जुड़ती रही है. अनेक क्षेत्रों और मतावलंबियों के साधु संतों ने इसे अपनाया. इसका क्षेत्र नाथपंथ के गोरखनाथ, महाराष्ट्र के नामदेव, बाहर से आए अमीर खुसरो और रसखान, गुजरात के दयाराम, बंगाल में कुतबन, आसाम के शंकरदेव, पंजाब के गुरुनानक और दखिनी हिन्दीतक विस्तृत है.

आज का समय बदला हुआ है. आज अंग्रेजी यहां की नौकरशाही और आभिजात्य वर्ग में समादृत है. अपने लिखित रूप में यह विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकाँश दस्तावेजों के मूल रूप यहाँ तक कि हमारा 'भारतीय संविधान' भी इसी भाषा में हैं और उसे ही प्रामाणिक माना गया है. पर आम जनता की बोलचाल की भाषा अंग्रेजी नहीं है इसमें कोई संदेह नहीं है. अंग्रेजी को अधिकाँश भारतीय जिनकी संख्या नब्बे प्रतिशत से अधिक है इसे नहीं समझते. यह जरूर है कि अंग्रेजी का आभिजात्य से रिश्ता है और गंभीर विचार-विमर्श के लिए उसे ही प्रमुखता मिली हुई है. यहविडम्बना ही है कि उन अंग्रेजों को हिन्दी में महारत हासिल करनी होती थी जो भारत में नौकरी करने आते थे पर भारतीय को भारत में नौकरी के लिए अंग्रेजी की क्षमता अपरिहार्य मानी जाती है, हिन्दी न आये, कोई बात नहीं. अंग्रेजी के पक्षकार मानते हैं कि अंग्रेजी आर्थिक विकास की वाहिका है और उससे भारतीय समाज का सशक्तीकरण होगा. पर कटु सत्य यह है कि अंग्रेजी की बाध्यता का मनोभाव न केवल देश के आर्थिक विकास को घटा रहा है बल्कि गुणवत्ता वाली शिक्षा के लक्ष्य को पाने में भी बाधा पैदा कर रहा है. भारत जैसे देश में जहां ज्यादातर लोग अंग्रेजी नहीं बोलते हैं और कुछ थोड़े से लोग घर पर अंग्रेजी बोलते हैं हर एक को अंग्रेजी बोलना सिखाना या सभी को अंग्रेजी शिक्षा मुहैया करा पाना एक असंभव सा लक्ष्य है. सच तो यही है कि अंग्रेजी भारतीय समाज के अल्पसंख्यक वर्ग का हिस्सा बनी रहेगी और अधिकाँश भारतवासी दैनिक जीवन में भारतीय भाषाओं का उपयोग करते रहेंगे.

आज स्थिति है कि ऊंचे स्तर पर महत्वपूर्ण काम अंग्रेजी में ही होता है. अतः शिक्षित भारतीय जो आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहे हैं या उसमें योगदान कर रहे हैं वे एक ऐसी भाषा में कर रहे हैं जो बहुसंख्यक भारतीयों के लिए स्पष्ट रूप से एक पराई भाषा है. बहुसंख्यक भारतीय जो अपनी मातृभाषा का उपयोग करते हैं आधुनिक विमर्श और विचार से कटे होते हैं. भारतीय भाषाओं में बौद्धिक विमर्श का अभाव उनके विकास और उपयोग को कम कर देता है. उनमें तकनीकी और स्तरीय शैक्षिक सामग्री का अभाव है. इसका परिणाम यह है चीनी, जापानी फ्रेंच या जर्मन लोगों जैसे जो गैर अंग्रेजी भाषा-भाषी जनों तक ज्ञान तक पहुँच कम हो जाती है.

भारतीय परिवार सूचना और अवसर की कमी की भरपाई करने के लिए अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में भेज रहे हैं. ऐसे स्कूलों की पूरे भारत में बाढ़ आ गई है. इनमें से बहुतेरे ऐसे हैं जिनकी गुणवत्ता संदिग्ध है. अधिकाँश बच्चों के लिए संप्रत्यय और भाषा दोनों को सीखने की जिम्मेदारी होती है. फलतः उनका शैक्षिक परिणाम कमजोर होता है. अधिकांश भारतीय बच्चे जिन्हें शुरू में अंग्रेजी पढ़ाई जाती है वे प्रकार्यात्मक दृष्टि से अनपढ़ होते हैं, उस भाषा में पढ़ने के कारण जिसे उन्होंने अच्छी तरह से नहीं सीखा है. मातृभाषा पर बल न देने के कारण और अंग्रेजी स्कूलों में ठीक से न पढ़ने के कारण समाज में कुशिक्षितों की जनसंख्या ही बढाई है.

विदेशी भाषा द्वारा सीखना बच्चे के सीखने की प्रगति को धीमा कर देता है. दिमाग को परिचित भाषा में अनुवाद करने में कुछ समय लगता है. उच्च स्तर के चिंतन के लिए एक साथ कई भाषाओं में सूचना आत्मसात करना ज्ञान के समुचित विकास को बाधित करता है. ज्ञानार्जन और एक दूसरी भाषा (जैसे अंग्रेजी) को सीखना तभी अच्छा हो सकता है जब उनके पास एक मूल भाषा की दक्षता मौजूद रहती है.

आभिजात्य वर्ग अंग्रेजी चाहता है और उस वर्ग में शामिल होने को आतुर सारा भारत यही चाहता है. अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि इससे भारत को तुलनात्मक लाभ मिलेगा. पर यह उन लाखों छात्रों को खराब हाल में रखने का उचित आधार नहीं है. आखिरकार केवल थोड़े से लोग ही वैश्विक व्यापार में दाखिल हो सकते हैं. हमें उन्हें ऐसे कौशलों और ज्ञान से सुसज्जित करना चाहिए जो देश के भीतर ही सफलता पाने के लिए जरूरी हों. यह गंभीरता से सोचने की जरूरत है कि कितने ऐसे काम हैं जिनके लिए अंग्रेजी का ज्ञान अनिवार्यतः जरूरी है? थोड़े से ही काम ऐसे हैं जिनके करने के लिए अंग्रेजी जरूरी होगी. यह भी समझना और महसूस करना जरूरी है कि आर्थिक और राजनैतिक विकास अंग्रेजी से नहीं बल्कि स्थानीय भाषा के उपयोग के आधार पर ही हो सकेगा.

हिन्दी का भविष्य इस पर निर्भर करता है कि वह सभी भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि बने, हिन्दी में पूरा देश प्रतिविम्बित हो. वह पूरे देश को, उसके विभिन्न क्षेत्रों, उनके साहित्य, संस्कार और जीवन के बोध की अभिव्यक्ति देनी वाली भाषा बने.

(राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के 25 वें दीक्षान्त समारोह के अवसर पर प्रस्तुत व्याख्यान का संपादित अंश)

महाराष्ट्र से अंतरराष्ट्रीय प्रवासन : कारण और प्रभाव

प्रज्ञा सुरेशराव राऊळ

प्रवासन निवास स्थान का वह परिवर्तन है जिसके कारण व्यक्ति को सामुदायिक जीवन में दुबारा सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। इसके कारण व्यक्ति का सामाजिक तथा आर्थिक संबंध परिवर्तित होने लगता है, क्योंकि वह एक समुदाय तथा उसके क्षेत्र को छोड़कर दूसरे समुदाय में निवास करने लगता है। दुनिया भर में प्रवासन और पलायन का इतिहास बहुत पुराना है। रोजगार और बेहतर जीवन की उम्मीदों के चलते पूरी दुनिया में देश की सीमा से बाहर और सीमा के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर रहने और वहां बस जाने की परंपरा बहुत पुरानी है मनुष्य की जन्मजात गतिशीलता और महत्वाकांक्षा ही प्रवासन का स्वरुप एवं प्रवासन की दिशा निर्धारित करती है। मानव प्रवासन के दो पहलू हैं प्रथमतः मानव केवल शारीरिक रूप से प्रवासित नहीं होता, बल्कि साथ में अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी प्रवासित करके ले जाता है। वह भौतिक एवं अभौतिक रुप में अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक गठरी को भी प्रवासित करता है।

औपनिवेशिक काल में भारत में बड़ी संख्या में भी प्रवासन हुआ था। इसके अंतर्गत सिद्ध दोष प्रवासन, अनुबंधित श्रमिक प्रवासन, कंगनी मैस्त्री इत्यादि के अंतर्गत प्रवासन को देखा गया। आज भारत से बड़ी संख्या में प्रवासन विकसित देशों की तरफ हो रहा है। शिक्षा, विवाह, रोजगार इसके प्रमुख कारण हैं।उसके साथ-साथ आज 90 प्रतिशत से अधिक कामगार खाड़ी देशों में और दक्षिण पूर्व एशिया में रोजगार के लिए प्रवासित हुए हैं।

आज बदलाव आ रहे हैं जल्दी ही भारत विश्व का सबसे विशाल और अत्यंत युवा श्रमशक्ति वाला देश बन जाएगा। साथ ही देश में शहरीकरण की व्यापक लहर उठ रही है और प्रति वर्ष लगभग 1 करोड़ लोग रोज़गार तथा अवसरों की तलाश में कस्बों और शहरों की ओर रुख कर रहे हैं। यह इस सदी का विशालतम ग्रामीण और शहरी प्रवासन (माइग्रेशन) है। आने वाले बदलावों की वजह से देश एक अद्भुत मोड़ पर पहुंच रहा है।

भारत की 40 करोड़ से अधिक जनता अभी तक ग़रीबी के चंगुल में फंसे विश्व के एक-तिहाई ग़रीबों का उत्थान करने में समर्थ संवृद्धि अर्जित करना भारत के लिए मुख्य बात होगी। और हाल ही में (अकेले 2005-2010 के बीच) ग़रीबी के चंगुल से छूटने वाले 5.3 करोड़ लोगों में से अनेक के दोबारा इसमें फंस जाने की संभावना है। वास्तव में जनसंख्या में वृद्धि हो जाने से भारत के कुछ एक सर्वाधिक ग़रीब राज्यों में वस्तुतः पिछले वर्षों में ग़रीबों की कुल संख्या बढ़ी है। वर्ग, लिंग, जाति, भाषा और धर्म के अनुसार आंतरिक प्रवासन की दर में फर्क है महिलाओं में प्रवासन की दर सबसे ज्यादा है. एनएसएसओ(NSSO) 2007-2008 के आंकड़ों में बताया गया है कि आंतरिक प्रवासियों में 80 फीसदी महिलाएं शामिल है इसकी बड़ी वजह विवाह के बाद महिलाओं का अन्यत्र निवास करना भी माना गया है इसी आंकड़े के मुताबिक, ग्रामीण क्षेत्रों में 91.3 फीसदी महिलाएं और शहरी क्षेत्रों में तकरीबन 60.8 फीसदी महिलाएं शादी के बाद दूसरे जगह रहने के लिए चली जाती हैं। देश में सर्वाधिक आंतरिक प्रवासन उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओड़िशा, उत्तराखंड और तमिलनाडु से हुआ है इनकी ज्यादातर आबादी देश की राजधानी दिल्ली, महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा, पंजाब और कर्नाटक की ओर पलायन कर चुकी है। देश में पलायन के कुछ चिह्नित गलियारे हैं, जैसे- बिहार से राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, हरियाणा और पंजाब, उत्तर प्रदेश से महाराष्ट्र, ओड़िशा से गुजरात, ओड़िशा से आंध्र प्रदेश और राजस्थान से गुजरात।

मराठी लोग मॉरीशस में

महाराष्ट्र राज्य का निर्माण 1 मई 1960 को मराठी भाषी लोगों के मांग पर किया गया था। मारिशस में प्रमुखत: महाराष्ट्र के क्षेत्र से मराठी भाषी लोगों का अनुबंधित श्रमिक के रूप में प्रवासन हुआ था। मारिशस के मराठी भाषी लोग प्रमुखत: हिंदू धर्म के है और वे मुम्बई बंदरगाह से प्रवासित हुए हैं। लगभग चालीस हजार से ज्यादा लोग सन 1910 तक मुंबई बंदरगाह से मारीशस में प्रवासित हुए है। महाराष्ट्र के विभिन्नक्षेत्रों से प्रमुखतः कोंकण, रत्नागिरी, राजापूर, पुणे, सातारा, कोल्हापूर इनक्षेत्रों में मराठी भाषी लोग मारीशस में प्रवासित हुए। महात्मा गांधी संस्थान में प्रवासी रिकार्ड के अनुसार सन् 1834 से ही मराठी लोग मजदूर और अनुबंधित श्रमीक के रुप में मारिशस में प्रवासित हुए थे। महात्मा गाँधी संस्थान के पी.ई. 1 सीरिज आर्काइव रिकार्ड में मुंबई से प्रवासित हुए मराठी भाषी लोगों की जानकारी संरक्षित की गई है। इस जानकारी के अनुसार लगभग 272 मराठी भाषी लोग सन् 1834 से 1839 तक मारीशस में प्रवासित हुए थे। 15 जून 1843 में मुंबई बंदरगाह से 285 पुरुष और 4 स्त्रियों को मारीशस के पोर्ट ऑफ़ लुईस में भेजा गया। इनमे से लगभग 173 अनुबंधित श्रमिक प्रवासित हुए। मराठी प्रवासियों के नाम पी. ई. सीरिज के रिकार्ड में दर्ज किये गए है। मराठी प्रवासियों के नाम और फोटो आर्काइव रिकार्ड के पी. ई. सीरीज वाल्यूम 1 से वाल्यूम 65 में संरक्षित है। मराठी भाषी लोगों को मारीशस में उनकी मूल मराठी भाषा के आधार पर पहचाना जाता है। जनगणना के अनुसार 1888 लोगों ने घोषित किया है कि वे घरों में मराठी भाषा का प्रयोग करते हैं और 1656 लोगों ने घोषित किया कि वे घरों में क्रियोल और मराठी भाषा का उपयोग करते है। लगभग 86 भोजपुरी और मराठी तथा अन्य लोग मराठी और अन्य भाषाओं का प्रयोग करते है। मराठी भाषी लोगों में अन्य बोलियों का प्रयोग भी प्रमुखता से किया जा रहा है।

महाराष्ट्र के लोगों के प्रवासन के विविध कारणों को देख सकते है। कुछ लोगो ने स्वयं की मर्जी से प्रवासन किया तो कुछ लोग सामाजिक आर्थिक और अन्य कारणों की वजह से और कुछ बलपूर्वक प्रवासन के लिए मजबुर हुए। भारत से उनका प्रवासन मुख्यत: अनुबंधित श्रमिक के रुप में ही हुआ। प्रवासन के पश्चात वे शुगर प्लांट के अनेक क्षेत्रों मे प्रवासित हुए। अनुबंधित श्रमिक के रुप में ब्रिटिश काल से ही महाराष्ट्र

से प्रवासन शुरु हुआ था। मुम्बई से पहला जहाज सन् 1934 में मारिशस में पहुँचा। 19 वी सदी के मध्य तक मराठी लोगों को बगानों में लाया जाता रहा। वहां सजातीयता के आधार पर समान पृष्ठभूमि वाले लोगों को इकट्ठा किया जाता था। कुछ परिसरों/बसावटों के नाम निवासियों के जातीय पहचान के आधार पर दिया जाता था। इसके अलावा निवासियों को एक दूसरे के सानिध्य में रखा जाता था, ताकि उनमें परिवार का गठन हो सके। ऐसे करीबी रिश्तेदार आगे समुदाय के बांड या बंधन को मजबूत बनाने के लिए मूख्य भूमिका अदा करते थे। कैम्प या शिविर अस्थाई रुप से बसाए जाते थे और उस क्षेत्र के आर्थिक जीवन और मजदूरों के मांग के अनुसार विकसित किए जाते थे। व्यक्ति एक शिविर से दूसरे शिविरमें रोजगार के अवसरों के आधार पर स्थानान्तरित होते थे। जमींदार मजदूरों को उन्ही के पास काम करने हेतु प्रेरित करते थे और इसीलिए वे उन्हे घरों का निर्माण करने के लिए लकडियां और अन्य संसाधन खेती के लिए सब्जियों के बीज और जानवरों के पालण-पोषण की सुविधा उपलब्ध करवाते थे। उस समय शिविर ही मारीशस के प्रवासियों का केंद्र था। कैम्प से वे मुख्यत: 1960 के बाद विभाजित हुए। आर्थिक स्थिति में परिवर्तन और कैम्प का विखंडन ही प्रवासियों के फैलाव का कारण बना।

आधुनिक युग में महाराष्ट्र से अंतरराष्ट्रीय प्रवासन

मराठी लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अनेक विकसित देशों में प्रवासन किया। सन् 1970 के दशक में मराठी लोग अमेरिका जैसे विकसित देशों में प्रवासित होने लगे। सर्वप्रथम उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु मराठी भाषी लोग इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा आदि विकसित देशों में प्रवासित हुए। कैरियर के अवसर उपलब्ध होने की वजह से वे वहीं पर बस गए। इसी शुरुआती दौर में वैद्यकीय, शोध और शैक्षणिक क्षेत्रों में काम करने हेतु अनेक मराठी लोग अमेरिका आकर बस गए थे। दिन प्रतिदिन मराठी लोगों की जनसंख्या अमेरिका में बढ़ने लगी । अमेरिकी शहर न्यूजर्सी में सन् 1998 तक अनेक मराठी भाषी लोग आकर बसने लगे। बहुसंख्य मराठी भाषी लोग ए.टी.टी., मार्क और जोन्सन एंड जोन्सन आदि मल्टीनेशनल कंपनियों में काम करने वाले मध्यम वर्ग के है। महाराष्ट्र से आज अंतरराष्ट्रीय प्रवासन हो रहा है। अधिकतर प्रवासन खाड़ी देशों की ओर अधिक हो रहा है। प्रवासित होने वाले व्यक्तियों में 30 से 40 आयु वर्ग के लोगों की संख्या अधिक है। उसके पश्चात प्रवासन विशेष रूप से तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में देखने को मिला, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तकनीकी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के लिए गंतव्य में अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। आज की वर्तमान स्थिति में मराठी क्षेत्र के लेखक, कलाकार, नाटककार, उत्कृष्ट नृत्य विशारद और संगीतज्ञ आदि लोग इस शहर में रह रहे है। अनेक कलाकार मराठी विश्व मंडल इस मराठी संघटन से जुडे है। वे अपनी कला एवं प्रतिभा का प्रदर्शन कर संघटना का नाम रोशन कर रहे है। इसी तरह उत्तर अमेरिका के लगभग 42 शहरों में मराठी भाषी लोग उपस्थित हैं और वे विभिन्न मराठी संघटनों से जुड़े हैं।

प्रवासन के सामाजिक नेटवर्क सिद्धांत के अनुसार प्रवासियों तथा उनके रिश्तेदारों तथा मित्र वर्ग के मध्य का आपसी जुड़ाव नए प्रवासन को आरंभ करता है। परंतु महाराष्ट्र में यह प्रवृत्ति नहीं पाई गई। किसी भी प्रवासित व्यक्ति द्वारा उनके मित्र वर्ग तथा रिश्तेदारों में आपसी जुड़ाव को देखा गया, परंतु प्रवासित व्यक्ति के द्वारा नये प्रवासन के आरंभ को सुविधाजनक बनाते नहीं देखा गया। नवशास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार विभिन्न श्रम बाजारों में प्राप्त होनेवाले आमदनी में अंतर द्वारा संचालित मानता है। इसका सबसे आधारभूत मॉडल मूल रूप से प्रवासन को आर्थिक विकास की एक प्रक्रिया के तौर पर व्याख्यायित करने के लिए हिक्स, लेविस और हैरिस एवं टोडारो द्वारा विकसित किया गया था। इनके कार्यों में यह प्रदर्शित किया गया था कि विभिन्न बाजारों या देशों में वास्तविक मजदूरी में अंतर के कारण प्रवासन होता है। महाराष्ट्र से हो रहे अंतरराष्ट्रीय प्रवासन के हमारे अध्ययन में यह पता चला कि उनके पास पहले से ही रोजगार थे, परंतु अधिक आर्थिक के उद्देश्य से वे लोग विदेश में प्रवासित हुए हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि महाराष्ट्र से अधिकतर प्रवासन रोजगार और आर्थिक प्राप्ति के लिए हुए हैं। निष्कर्ष के अनुसार प्रवासन को संपूर्णतः घरेलू समूह प्रोत्साहित करते हैं, क्योंकि व्यक्ति अपने परिवार को अच्छी शिक्षा, अच्छी जीवनशैली और अच्छा स्वास्थ्य इत्यादि देना चाहता है, उसके लिए उसे अधिक आर्थिक प्राप्ति की आवश्यकता होती है और अधिक आर्थिक प्राप्ति के कारण ही वह प्रवासित होता है। किसी प्रवासित व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को देखकर अन्य लोग भी प्रवासन के लिए सकारात्मक तरीके से सोचने लगते हैं।

आदित्य सिंह (कक्षा 5, संदिपनी स्कूल, हजारी पहाड़, नागपुर) से साभार

हिंदी में विभक्ति और परसर्ग

धनजी प्रसाद
प्रवीण कुमार पाण्डेय

प्राय: आधुनिक विश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं जैसे : हिंदी, अंग्रेजी आदि में कुछ इकाइयाँ पाई जाती हैं जिनका अपना कोशीय अर्थ नहीं होता किंतु इनका प्रयोग वाक्य में शब्द की तरह ही होता है और इनके योग से शब्द-निर्माण नहीं होता बल्कि पदबंध की रचना की जाती है। इन इकाइयों का प्रकार्य भी वाक्यात्मक होता है। अंग्रेजी में इस प्रकार की इकाइयों को 'preposition' कहा गया है। जैसे: in the room, on the table, to the point आदि पदबंधों में 'in', 'on' और 'to' prepositions हैं। हिंदी में भी इस प्रकार की इकाइयाँ पाई जाती हैं जैसे : कमरे में, मेज पर, घर को आदि पदबंधों में 'में', 'पर' और 'को' यही कार्य कर रहे हैं। मुख्यत: ये कारक संबंधों को व्यक्त करते हैं। हिंदी का विकास संस्कृत से हुआ है और संस्कृत में यह कार्य 'विभक्ति' द्वारा किया जाता है। इसी कारण हिंदी में इनके नाम को लेकर विवाद की स्थिति है।

कारक संबंधों को व्यक्त करने के लिए संज्ञा (या सर्वनाम) पदों (या पदबंधों) के साथ कुछ रूपों (morphs) या चिह्नों का प्रयोग किया जाता है; जैसे-

(1) उसने राम को मेरी किताब दी।

(2) मैंने अपना छाता गाड़ी में छोड़ दिया।

उपरोक्त वाक्यों में 'ने', 'को', 'में' और 'Ø' भाषाई रूप (Linguistic forms) हैं। हिंदी में इन्हें दो नामों से जाना जाता है- 'विभक्ति' और 'परसर्ग'। हिंदी के आरंभिक व्याकरणाचार्यों ने इन्हें 'विभक्ति' कहा है; किंतु बाद के विद्वानों द्वारा इनके लिए 'परसर्ग' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

हिंदी में कारक संबंधों को व्यक्त करने वाले चिह्नों को आरम्भिक व्याकरणाचार्यों द्वारा 'विभक्ति' कहा गया है। यथा- पं. कामता प्रसाद गुरु ने कहा है- "कारक सूचित करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय लगाए जाते हैं, उन्हें विभक्तियाँ कहते हैं।" इन्होंने हिंदी में 8 कारकों को माना है तथा इनकी विभक्तियों के रूप में ने, को, से आदि का उल्लेख किया है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने भी इन कारक चिह्नों को विभक्ति कहते हुए इनके दो भेद किए हैं- विश्लिष्ट और संश्लिष्ट। उन्होंने कहा है कि – "कुछ लोग हिंदी की 'ने', 'को' आदि विभक्तियों को परसर्ग कहते हैं। यह एक नया अड़ंगा, नयी झंझट। विभक्ति शब्द हमें परंपरा से प्राप्त है, प्रसिद्ध है। उसकी जगह परसर्ग चलाना किस काम का?"

हिंदी में कारक और विभक्ति के संदर्भ में वास्तविक स्थिति यह है कि संस्कृत से अपभ्रंश काल तक आते-आते सभी कारकों की विभक्तियाँ लुप्त हो गईं और सभी केरूप एक समान होने लगे, जिससे कि अर्थ में असमानता आने लगी। इस कारण से कारकीय संबंधों को प्रकट करने के लिए कुछ समर्थ चिह्नों या रूपों (morphs) को मूल शब्दों में जोड़ा जाने लगा। इन्हीं चिह्नों को बाद में चलकर अनेक विद्वानों (जैसे- उदय नारायण तिवारी, हरिवंश सिंह आदि) द्वारा परसर्ग कहा गया। कुछ विद्वानों जैसे- डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने इन्हें 'कारक-चिह्न' कहा है। हिंदी में कारक संबंधों को व्यक्त करने का कार्य मुख्यत: परसर्गों द्वारा ही किया जाता है।

परसर्ग : परसर्ग शब्द की व्युत्पत्ति 'पर' और 'सर्ग' के संयोग से हुई है। कैलाग आदि पाश्चात्य विद्वानों ने अंग्रेजी के 'preposition' के अनुकरण कर इसे 'postposition' नाम दिया, जिसे हिंदी के भाषा वैज्ञानिकों ने उपसर्ग की तर्ज पर 'परसर्ग' बना दिया। किंतु यहाँ पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि 'उपसर्ग' और परसर्ग में ध्वन्यात्मक साम्य अवश्य है लेकिन प्रकार्यात्मक और संरचनात्मक दृष्टि से दोनों अलग-अलग हैं। एक ओर 'उपसर्ग' जहाँ 'प्रत्यय' (affix) का एक प्रकार है तथा उपसर्गों के योग से शब्द-निर्माण होता है वहीं 'परसर्ग' विभक्ति की तरह कार्य करने वाले नवीन भाषिक रूप हैं जिनके योग से पदबंध का निर्माण होता है। किशोरीदास वाजपेयी 'परसर्ग' शब्द को अनावश्यक मानते हैं। ये ने, को, से, का, में, पर आदि को विश्लिष्ट विभक्ति नाम देते हैं। किन्तु परसर्ग शब्द इतना प्रचलित हो गया है कि इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'परसर्ग' का कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं होता है लेकिन उनके व्याकरणिक प्रकार्य होते हैं। आचार्य काशीराम शर्मा ने परसर्ग को अपनी पुस्तक 'हिंदी व्याकरण मीमांसा' में 'परस्थानिक' कहा है।

अर्थबोधक तत्वों या कारक को प्रकट करने वाले सहायक तत्वों को कुछ लोग विभक्ति चिन्ह, कारक चिन्ह, या परसर्ग कहते हैं। जैसे- डॉ धीरेंद्र वर्मा इन्हें 'कारक-चिह्न' बताते हैं और डॉ उदयनारायण तिवारी इन्हें 'परसर्ग' कहते हैं। कुछ भाषाओं में ये पहले भी लगते हैं जैसे अंग्रेजी में। इसे हम प्रिपोजीशन (preposition) कहते हैं, जिन्हें पद के पहले जोड़ते है, लेकिन हिंदी में पदों के बाद जोड़ते हैं। जैसे- राम का, राम को इत्यादि। वस्तुतः कारक बोधक चिन्ह होते हुए भी इनका विकास प्रायः स्वतंत्र पदों से हुआ है। इसलिए इन्हें परसर्ग कहना ज्यादा उपयुक्त है।

हिंदी भाषा में वाक्यों की रचना करने वाले पदों के प्राप्त संबंधों के मुख्यत: दो वर्ग बनाए जा सकते हैं- कारक संबंध और अन्य संबंध। वाक्य में संज्ञा पदों को क्रिया पदों से जोड़ने वाला संबंध कारकीय संबंध है। इसके अंतर्गत जो भी संबंध प्राप्त हों सबको अन्य संबंध के अंतर्गत रखा जाता है जैसे- अंगांगी संबंध, स्वस्वामी संबंध, जन्य-जनक संबंध आदि। इन संबंधों को व्यक्त करने के लिए जिन कोशीय अर्थ से रिक्त शब्दों या चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें 'परसर्ग' कहते हैं।

विभक्ति तथा परसर्ग : विभक्ति और परसर्ग में एक महत्वपूर्ण अंतर इस रूप में प्राप्त होता है कि विभक्ति प्रातिपदिक के साथ घुलमिल जाती है जबकि परसर्ग अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है, वह प्रातिपदिक का अंश नहीं होता है। प्रातिपदिक अथवा मूल एवं इनके ऊपर लगने वाले विभक्ति/परसर्ग कि पहचान इन दोनों के मध्य जहाँ अवरोध को देखकर लगा सकते है अर्थात जहाँ इन दोनों के मध्य अवरोध हो सकता है वहाँ परसर्ग मानना चाहिए तथा अवरोध संभव न होने पर विभक्ति। इस आधार पर हिंदी में एक अलग ही स्थिति मिलती है। उदाहरण- घोड़े पर सवार। यहाँ 'पर' परसर्ग है क्योंकि इसके बीच शब्द/पद आ सकता है। जैसे- घोड़े ही पर सवार। यहाँ 'ही' घोड़ा और 'पर' के बीच में आ सकता हैं। इसके विपरीत –

मै + को => मुझ + ए – मुझे

इसमें मूल शब्द 'मैं' है और उसके साथ परसर्गीय रूप लगा है। इन दोनों के मध्य अवरोध नहीं हो सकता। इस आधार पर हमें हिंदी में (रूपात्मक परिवर्तनों सहित) दो विभक्ति प्रत्यय प्राप्त होते हैं-

(क) (-ए) उसे, मुझे, किसे

(-एँ) जिन्हें, उन्हें

(ख) (-रा) तेरा, हमारा

(-रे) हमारे, तुम्हारे

(-री) मेरी, तुम्हारी

(-ना) अपना

(-ने) अपने

(-नी) अपनी

वास्तव में ये परसर्गीय रूप हैं जो सर्वनाम शब्दों के साथ मिलकर तिर्यक रूपों का निर्माण करते हैं। इनमें 'ए' 'को' का तथा 'रा' 'का' का परसर्गीय रूप है। सर्वनाम के साथ विभक्ति की तरह मिल जाना इनकी अपनी विशिष्ट विशेषता है। किंतु केवल इन्हीं के आधार पर हम सभी परसर्गों को विभक्ति नहीं कह सकते। अत: इन्हें परसर्गीय रूप कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।

हिंदी परसर्गों की अपनी कुछ भाषिक एवं संरचनात्मक विशेषताएँ भी प्राप्त होती हैं जो इन्हें विभक्तियों से अलग करती हैं। जैसे:

1. हिंदी में 'कर्ता' पदबंध के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग हिंदी परसर्गों की अद्वितीय विशेषता है। कुछ विशिष्ट वाक्यात्मक संरचनाओं में ही 'ने' परसर्ग का प्रयोग किया जाता है; यथा, जब क्रिया सकर्मक हो और भूतकाल में हो। जैसे: 'राम ने खाना खाया।' इस प्रकार के किसी भी विभक्ति चिह्न या भाषिक रूप का प्रयोग संस्कृत (या किसी भी दूसरी भाषा) में दिखाई नहीं पड़ता। अत: हिंदी में परसर्गों की विशिष्ट व्यवस्था में 'ने' अपनी अलग पहचान बनाता है।

2. संस्कृत में शब्द मूल (धातु और प्रातिपदिक) होता है और उसमें विभक्तियों के योग से शब्द रूप बनते हैं, जैसे: संज्ञा प्रातिपदिक 'राम' से 'राम: रामौ, रामा: रामम् आदि, और धातु 'गच्छ' से 'गच्छति, गच्छत:, गच्छन्ति' आदि। किंतु हिंदी में शब्दों के साथ परसर्गों को जोड़ने के लिए उनका परसर्गीय रूप (तिर्यक रूप) बनाना पड़ता है; जैसे: संज्ञा शब्द 'लड़का' में परसर्ग जोड़ने के लिए इसका परसर्गीय रूप 'लड़के' करना पड़ता है, यथा 'लड़के ने/ को' आदि। इसके साथ ही किसी शब्द में परसर्ग जोड़ने पर शब्द रूप नहीं बल्कि 'परसर्गीय पदबंध' का निर्माण होता है।

3. संस्कृत में संज्ञा कर्ता के वचन के आधार पर तीन विभक्ति रूप हैं यथा 'बालक' के 'बालक:' 'बालकौ' और 'बालका:' वाक्य में इनके अनुसार ही क्रिया रूप का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् कर्ता के साथ क्रिया की अन्विति होती है; जैसे: 'बालक: गच्छति', 'बालकौ गच्छत:' एवं 'बालका: गच्छन्ति।' किंतु हिंदी में कर्ता के साथ क्रिया की अन्विति तभी होती है जब उसके साथ कोई परसर्ग न आया हो, कर्ता के साथ किसी परसर्ग का प्रयोग होते ही क्रिया उससे स्वतंत्र हो जाती है। जैसे: 'सीता खाना खाएगी' और 'सीता ने खाना खाया।' इन उदाहरणों में प्रथम वाक्य में 'सीता' के साथ कोई परसर्ग नहीं आया है इस कारण क्रिया रूप 'खाएगी' की अन्विति 'सीता' के साथ हो रही है किंतु दूसरे वाक्य में 'सीता' के साथ 'ने' परसर्ग आते ही उसका रूप 'सीता' के व्याकरणिक रूप 'स्त्रीलिंग' से स्वतंत्र हो जाता है।

4. हिंदी में परसर्गों का एक प्रकार 'संयुक्त परसर्ग' है जिसमें मूल परसर्गों के साथ कुछ अव्यय जुड़कर आते हैं; जैसे : के बाद, के सामने, के भीतर, के लिए आदि। इसके अतिरिक्त एक से अधिक परसर्ग मिलकर एक इकाई के रूप में भी आते हैं; जैसे : 'में से', 'पर से' आदि, तथा कभी-कभी दो परसर्गों के बीच कोई अव्यय भी आता है; जैसे : 'के उपर से', 'के अंदर से' आदि। किंतु संस्कृत विभक्तियों में इस प्रकार की संरचनाएँ नहीं पाई जाती हैं।

5. विभक्ति प्रत्ययों द्वारा पद-निर्माण को दृष्टिगत रखते हिंदी व्यकरणाचार्यो द्वारा इन्हें शब्द के व्याकरणिक रूप निर्माण का साधन कहा गया है। विभक्ति प्रत्ययों का प्रयोग धातु के साथ (क्रिया पदबंध) के निर्माण के लिए भी किया जाता है किंतु परसर्गों का प्रयोग क्रिया पदबंधों के निर्माण के लिए नहीं किया जाता। अत: परसर्गों की सत्ता विभक्तियों से अलग है। (देखें उप्रेती, 2009)।

इस प्रकार विभक्ति और परसर्ग की संकल्पना अलग-अलग माननी चाहिए। जैसा कि अनिल कुमार पाण्डेय का कहना है, "विभक्ति चिह्न की संकल्पना संस्कृत से है। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि विभक्तियों के अंतर्गत ही सभी नामपदों को रखा गया है परंतु हिंदी में ऐसी व्यवस्था नहीं है। दूसरी बात सभी परसर्गों को कारक चिह्न कहना भी उचित नहीं लगता क्योंकि सभी परसर्ग कारकीय संबंधों को व्यक्त नहीं करते। कुछ परसर्ग ही सभी कारकीय संबंधों को व्यक्त कर लेते हैं। अतः परसर्ग कहना ही मेरे विचार से समाचीन होगा।" भारत में हिंदी के विकास एवं इसके लिए स्रोत (resource) निर्माण में आधारभूत भूमिका निभाने वाले संस्थान केंद्रीय हिंदी निदेशालय (1967) द्वारा भी इन्हें परसर्ग ही कहा गया है। अत: परसर्ग ऐसे शब्द हैं जिनके व्याकरणिक प्रकार्य तो हैं, लेकिन कोशीय अर्थ नहीं। हिंदी में ने, को, से, में, पर, का, की, के आदि परसर्ग हैं। इनका प्रयोग मुख्यत: कारक संबंधों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। 'परसर्ग' नाम अब धीरे-धीरे अत्यंत प्रचलित हो गया है। यदि हिंदी को केंद्र में रखते हुए विचार किया जाए तो 'परसर्गों' को विभक्ति नहीं कहा जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ :

1. उप्रेती, मुरारीलाल (2009), हिंदी में प्रत्यय एवं पश्चाश्रयी-विचार, दिल्ली : आलेख प्रकाशन
2. गुरु, कामता प्रसाद. (1920), हिंदी व्याकरण, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा
3. चौधरी, तेजपाल- हिंदी व्याकरण विमर्श, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन
4. पाण्डेय, अनिल कुमार (2010) हिंदी संरचना के विविध पक्ष, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान
5. वाजपेयी, किशोरीदास (सं. 2055 वि.) हिंदी शब्दानुशासन, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा
6. सहाय, चतुर्भुज (1981) 'हिंदी की परसर्गीय व्यवस्था' गवेषणा, 38
7. सहाय, चतुर्भुज (1992), हिंदी में कारक, विभक्ति और परसर्ग की समस्या, गवेषणा-59-60
8. सिंह, सूरजभान (2000), हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण, दिल्ली : साहित्य सहकार
9. सिंह, हरिवंश (2003) कारक व्याकरण की दृष्टि से हिंदी परसर्ग विचार, आगरा : केंद्रीय हिंदी संस्थान

जापानी बौद्ध भिक्षु फ्यूजी गुरूजी की गाँधी जी से प्रथम भेंट

शुभांगी महादेव शंभरकर

जापानी बौद्ध भिक्षु फुजीई गुरूजी निमियत रूप से डायरी लिखते थे. वे दिनांक 4 अक्टूबर, 1933 को वर्धा गाँधी जी मिलने पहुँचे थे. उस दिन उनकी महात्मा गांधी से प्रथम भेंट हुयी. उन्होंने अपनी गाँधी जी से मुलाक़ात का पूरा प्रसंग स्वयं उनके शब्दों में इस प्रकार है: "हम लोग दिनांक 4 अक्टूबर, 1933 को वर्धा स्टेशन प्रातः 9 बजकर 40 मिनट पर पंहुचे।[1] हम लोगों ने अपना सामान रेलगाड़ी से निकाला तथा श्री जमनालाल बजाज की कोठी में पहुंचने के लिए आपस में विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि कई नवयुवतियों के साथ एक लम्बे भारतीय भद्र पुरूष रेलवे प्लेटफार्म पर दिखाई पड़े। मैंने उनसे बजाज जी के बंगले तक पहुंचने के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया के वे स्वयं बजाज हैं और हम लोगों से कार में चढ़ने का आग्रह किया। उन नवयुवतियों में से कुछ की बम्बई में कमला देवी के स्थान तक आई थी। सफू महोदय ने, जो हम लोगो के साथ नाम 'सफू' की जगह 'साधू' लिख दिया था। बजाज जी ने सोचा कि यह तार जापानी भिक्षुओं द्वारा भेजा गया है क्योंकि उन्हें यह सूचना थी कि हम लोग दोपहर के पश्चात् आ रहे हैं। भिक्षुओं का स्वागत करने के लिए वे स्टेशन पहुंचे थे। हिन्दी भाषा में साधु का अर्थ भिक्षु (मुनि) होता है। तार गलत पढ़ा जाने का यही कारण था। तथापि सफू महोदय एवं साधुओं दोनों का स्वागत हो सकता था। इसलिए तार के गलत पढ़े जाने से कोई समस्या नहीं हुई।

बंगला, वर्धा से कुछ दूरी पर एक शान्त क्षेत्र में स्थित था। हम लोगों के आवास के लिए एक कमरा मिला। मौसम गर्म रहने के कारण हम लोगों को सर्वप्रथम स्नान करने के लिए कहा गया। गर्म पानी के दो बड़े टब पहले से मौजूद थे। चाय, दूध, सन्तरे, केले एवं कुछ मिठाईयों से हम लोगों का स्वागत किया गया। मुझे यहाँ घर की तरह आराम मिला मानों मैं अपनी जन्मभूमि जापान वापस आ गया हूँ।

शीघ्र ही भोजन के लिए घंटी बजी। बरामदे के पथरीले फर्श पर दो कतारों में लगभग बीस से तीस नवयुवक एवं महिलाएँ बैठी थीं। कुछ पालथी मारकर बैठे थे, तो कुछ घटनों के बल। उन लोगों ने प्रार्थना के पश्चात् भोजन करना प्रारम्भ किया। पहले चपातियाँ परोसी गयीं एवं उसके पश्चात् घी के साथ चावल परोसा गया। दही एवं कुछ मिठाईयाँ भी परोसी गई। आज का भोजन हम लोगों के लिए एक बृहद भोज के रूप में था। जब वे लोग बैठे थे, उसी समय उन लोगों ने अपना परिचय हम लोगों को दिया। एक बूढ़े मुस्लिम सज्जन ने अपना परिचय गम्भीरतापूर्वक दिया। पूज्य ओकित्सु ने मेरा परिचय दिया। बजाज जी ने नवयुवतियों का परिचय कराया। वे बीस वर्ष से कम उम्र की मालूम होती थीं। उनका शिष्ट आचरण हमारे यहाँ की जापानी नवयुवतियों के समान था। ऐसा कहा गया कि उनमें से कुछ चार-चार बार जेल से हो आयी हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि किस तरह का अपराध उन लोगों ने किया था। जेल जाना अनिवार्यतः गौरव की बात नहीं हैं, किन्तु ऐसी बात होती थी कि इसके लिए वे शर्मिन्दा नहीं हैं। वे जेल की यात्रा को वर्षा एवं प्रकाश की तरह प्राकृतिक मान सकती हैं।

क्या महात्मा गांधी ने अपनी हृदय में आंसुओं को छिपाने की कोई कोशिश नहीं की? यदि वे छिपाते तो, वे उस समय राक्षस की तरह दिखलाई पड़ते, जब वे लोगों को जेल का जीवन बिताने के लिए बाध्य करते थे। हमारा संस्थान निप्पाने झान म्योहोजी ने अब तब ऐसी कठोर परीक्षा का अनुभव नहीं किया था। यदि हम लोग सामान्य जीवन के चिढ़े हुए थे, तो इसका कारण यह हो सकता है कि हम लोगों को अब तक प्रतिहिंसा एवं शत्रुतासे भरी हुई परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ा हैं। मैं उनकी महात्मा गांधी के समस्त अनुयायियों की प्रशंश करता हूं एवं उनके प्रति मेरी श्रद्धा है। मैं उनकी तुलना हीरे से करना चाहूंगा जिसको जितनी कठोरता से रगड़ा जाता है, उतना ही उसमें सौन्दर्य आता है। महात्मा के साथ मुलकात का समय केवल 14 मिनट के लिए सायंकाल 4 बजे दिया गया था। मैं कुछ आवश्यक बातें उनके साथ करना चाहता था एवं कुछ बातें उनसे चाहता था। मैं जो बातें उनके साथ करना चाहता था, उसका सारांश एक कागज पर लिख लिया एवं इसे पूज्य ओकित्सु को दे दिया। उन्होंने तत्काल अनुवाद करने का प्रयास किया, किन्तु समयाभाव के कारण आज संभव नहीं हो सका। 04 बजे से पहले बंगले के सचिव ने बताया कि एक कार हमारी प्रतीक्षा में खड़ी है। हम लोग कार से उतर गये एवं ड्रम बजाते हुए तथा गाते हुए रवाना हुए।

जब हम लोग पहुंचे, कस्तूरबा के नेतृत्व में कई महिलाएँ हम लोगों का स्वागत करने के लिए आगे आयीं। महात्मा का कमरा ऊपरी मंजिल पर स्थित था। हम लोगों को उपरी मंजिल पर ले जाया गया। अपने कमरे के सामने खुलाबदन अवस्था में महात्मा गांधी सूत कातने में व्यस्त थे। उनके दोनों और बजाज जी सहित अनुयायी बैठे हुए थे। उनके सामने पत्रकार एवं दूसरे अतिथि जो महात्मा गांधी से मिलने के लिए आऐ थे एक कतार में बैठे हुए थे। हम लोगों को आगे के जाया गया एवं उनके सामने बिठाया गया। दोनों हाथ जोड़कर हम लोगों ने उनके प्रति अपने सम्मान का प्रदर्शन किया एवं तीन बार 'ना-मु-म्यो-हो-रें-गे-क्यों' का उच्चारण किया। पूज्य ओकित्सु ने महात्मा से मेरा परिचय कराया एवं यादगारी के तौर पर जापानी बिस्कुट एवं हाथ से बनाया हुआ एक पंखा उन्हें भेंट स्वरूप प्रदान किया गया। बिस्कुट बम्बई के ससाकुरा महोदय की ओर से तथा पंखा जापान स्थित कोबे से मेरे अनुयायियोंकी ओर से भेंट स्वरूप प्रदान किया गया था।

[1] यह पूरा प्रसंग 'वर्धा डायरी' से लिया गया है. फुजीई गुरूजी निमियत रूप से डायरी लिखते थे. दिनांक4 अक्टूबर, 1933 को वर्धा में उनकी महात्मा गांधी जी से प्रथम भेंट हुयी. यह डायरी फुजीई गुरूजी मेमोरियल ट्रस्ट, गोपुरी, वर्धा से श्री अ.वि.जोशी द्वारा पुन:2003 में प्रकाशित कराया गया.

महात्मा उस समय पहले के अपेक्षा स्वस्थ एवं तरुण दिखाई दे रहे थे, जब मैंने उन्हें लन्दन में आयोजित गोलमेज सम्मेलन से वापसी के समय बम्बई के विक्टोरिया बन्दरगाह पर देखा था। उनके चेहरे पर एक शिशु की तरह मुस्कान थी एवं नहीं मालूम होता था कि वे किसी प्रकार के कष्ट में हों। मुझे केवल उनके स्वास्थ्य की चिन्ता थी। ''उनका स्वास्थ्य अमूल्य निधि के समान केवल भारतीयों के लिए नहीं, बल्कि हम समस्त लोगों के लिए हैं। मैंने आज की मुलाकात का उसी तरह आनन्द उठाया जैसे मानो कोई अमूल्य रत्न मिला गया हो।'' 37 करोड़ भारतीयों को उनके कष्टों से मुक्त कराने के उद्देश्य की पूर्ति केलिए उनका सम्पूर्ण जीवन महान त्याग से परिपूर्ण था। ''यह वही मानव हैं, जो अपने चेहरे पर मधुर मुस्कान लिये हुए सूत कात रहा है। जब मैं इस बिन्दु पर सोचने लगा, तब मैं अपने आंसुओं को दोनों हाथों पर गिरने से नहीं रोक सका। सूत कातने से क्या आनन्द प्राप्त होता है? सूत कातने जैसे एक छोटे से कार्य में किसी व्यक्ति को कैसे हार्दिक आनन्द प्राप्त हो सकता है, जब तक उसका हृदय अपने एक भी निर्धन भाई के शरीर को ढंकने के लिए महान आदर्श से अनुप्राणित न हो। 'महात्मा के लिए तकली एक साधारण तकली नहीं थी, बल्कि एक ऐसे अन्यतम मित्र के समान थी जिनमें आँसू दूसरों के लिए हो एवं जिनमें असीमित दया का खजाना हो।'

महात्मा मेरे उपहार को पाकर प्रसन्न हुए एवं आनन्दपूर्वक कहा कि ''जापानी सामान हमेशा आकर्षक एवं सस्ते होते हैं, किन्तु फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से महंगे। क्या जापानी इन सामानों के माध्यम से हिन्दुस्थान पर विजय पाना चाहते हैं?''

पूज्य ओकित्सु ने मेरी पाण्डुलिपियों को उनके समझ रखा किन्तु उनके पास अनुवाद करने का समय नहीं था। उन्हें महात्मा के प्रश्नों का उत्तर स्वयं देना था। पूज्य ओकित्सु ने पूछा, 'इस प्रकार?' महात्मा ने ईमानदारी से उत्तर दिया 'व्यापार के जरिए'। भारत जो पर्यात्त प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर है, अंग्रेजी द्वारा इसका इतना शोषण किया गया कि यह अत्यन्त निर्धन हो गया। हिन्दुस्तान को कितनी भी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े, महात्मा गांधी यह नहीं देख सकते थे कि भारतीय धन विदेशों में जाय। पूज्य ओकित्सु ने इस प्रश्न को टालते हुए कहा कि हमें व्यापार से कोई मतलब नहीं है क्योंकि हम लोग भिक्षु हैं। उन्होंने महात्मा को आश्वासन दिया, 'ये मिठाईया जापानी व्यापार की प्रतीक नहीं हैं, बल्कि हमारी शुभकामनाओं का प्रतीक हैं। महात्मा गांधी ने अंत में विश्वास किया कि ये सुन्दर चीजें हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त करने के लिए कोई गुप्त संदेश नहीं है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि नहीं है कि सभी जापानी मुनाफाखोर हों। उन्होंने मिठाईयों के बक्सों की सुन्दर सजावट की ओर ईशारा करते हुए कहा 'क्या ये चीज खाई जा सकती है'। पूज्य ओकित्सु ने उत्तर दिया'नहीं, ये खाई नहीं जा सकती हैं क्योंकि यह मात्र सजावट है।' उन्होंने मिठाई के बक्से पर ढके हुए बैंगनी रंग के सूती कपड़े को उठा लिया और पूछा'क्या यह भी किसी प्रकार का बिस्कुट है?' महात्मा जी मिठाइयों के इस साधारण उपहार की इस सुन्दर सजावट को देखकर बहुत आश्यर्च चकित थे। पूज्य ओकित्सु ने महात्मा के प्रश्न का उत्तर दिया 'नहीं इसे आप नहीं खा सकते हैं। यह मात्र ढकने के लिए सूती कपडा है'

इसके बाद उन्होंने वार्तालाप का विषय बदल दिया। उन्होंने मेरा परिचय महात्मा जी से कराया। महात्मा जी को बताया गया कि मैं हिन्दुस्थान में तीन वर्षो से था। महात्मा जी ने मुझसे पूछाक्या आप मुझसे अंग्रेजी में बोल सकते हैं? उनका उद्देश्य मेरे साथ सम्पर्क के साधनों को खोजना था। पूज्य ओकित्सु ने बताया, 'ये अग्रेजी बोलना पसन्द नहीं करते हैं।' महात्मा जी ने फिर पूछ 'अच्छी बात है, आप अंग्रेजी बोलना पसन्द नहीं करते हैं। तब क्या पालि एवं संस्कृत आज जानते हैं? ' पूज्य ओकित्सु ने निःसंकोच स्वीकार किया- 'ये दोनों में से कोई भाषा नहीं जानते है।' महात्मा जी को हमारी ठोस अज्ञानता के विषय में सुनकर आश्चर्य हुआ।

पूज्य ओकित्सु ने मेरी अज्ञानता को स्पष्ट करते हुए बताया- ''बौद्ध भिक्षु जब जापान से हिन्दुस्थान आते हैं तो वे शायद संस्कृत या पालि सीखना चाहते हैं इन्होंने जापान में अनुदित बुद्ध के सभी उपदेशों पर अधिकार प्राप्त किया है। संस्कृत या पालि का अध्ययन करना विद्वानों का काम है। हम लोगों का सारा समय धार्मिक कार्यों के लिए समर्पित करना पड़ता है।'' महात्मा गांधी ने पुनः पूछा- 'तब क्या हिन्दी जानते है ?' पूज्य ओकित्सु ने उत्तर दिया- 'प्रारम्भ में जब ये यहाँ ठहरे हुए थे, तो हिन्दी बोलते थे, किन्तु जब ये श्री लंका डेढ़ वर्षो के लिए गये तो पूर्णतः हिन्दी भूल गये। महात्मा जी ने मुझे हिन्दी सीखने की सलाह देते हुए कहा- 'हिन्दी सीखने की कोशिश कीजिए। हम लोग हिन्दी में बात करेंगे।'

महात्मा जी ड्रम के विषय में जानने के लिए जिज्ञासापूर्वक वार्तालाप प्रारम्भ किया, 'यह क्या है और इसे आप क्यों बजाते हैं? पूज्य ओकित्सु ने उत्तर दिया, 'यह जापान में बुद्ध के उपदेशों का प्रतिनिधित्व करता है। हम लोग ड्रम जहाँ भी जितना अधिक से अधिक समय मिलता है, इसे बजाते है।' महात्मा जी ने स्वीकार किया, 'मैंने एक अफवाह सुनी थी कि बम्बई में जापानी भिक्षु प्रतिदिन रात में ड्रम बजाते हुए घूमते रहते है। महात्माजी ने पुनः वार्तालाप को जारी रखते हुए पूछा- 'बौद्ध सम्प्रदाय ड्रम क्यों बजाते हैं? पूज्य ओकित्सु ने बताया, 'महान बौद्ध निचिरेन द्वारा इसकी स्थापना की गई थी। इस मत को निचिरेन का मत कहा जाता है एवं इसकी स्थापना जापान में सात सौ वर्ष पूर्व हुई थी' महात्माजी ने पुनः पूछा- 'क्या इस मत को मानने वाले सभी व्यक्ति ड्रम बजाते है। ऐसे लोग ड्रम बजाने के प्रति समर्पित नहीं होते हैं हमें। फुजीई गुरूजी द्वारा सिखाया गया है कि हम हृदय से ड्रम बजावें और 'ना-मु-म्यो-हो -रें-गे-ग्यो' का उच्चारण करें। इन दिनों अनेक शिष्यों एवं अनुयायियों को ऐसा करने का आदेश है।

चार बजकर बीस मिनट से ज्यादा हो चुके थे। महात्मा जी ने हंसते हुए धीरे से देखा कि मुलाकात के लिए स्वीकृत समय समाप्त होने केकरीब है और वे आज की मुलाकात समाप्त कर रहे थे। मैंने मुलाकात शुरू होने से लेकर अंत तक दोनों हाथ जोड़े हुए अपनी आँखे बन्दी रखी थी। मैं इस अप्रत्याशित अवसर के लिए कृतज्ञ था। मुझे वार्तालाप के जरिए महात्मा जी को छोड़कर कोई दूसरी चीज नहीं पानी थी। मैंने उनका मत सुनने की कोशिश नहीं की और न बताने की कोशिश की। भारत के समस्त समाचार पत्रों ने इस मुलाकात के विषय में समाचार छापा और बताया कि बीस मिनट के लम्बी मुलाकात के समय मैं हमेशा 'ओदाईमोकू' के उच्चारण के साथ प्रार्थना कर रहा था।

दोहरे दमन का संयुक्त अवचेतन : भारतीयदलित

गजानन निलामे

"...दुनिया ऐसी है जिसमें स्त्रियों से अधिक मर्दों पर,बच्चों से अधिक प्रोढ़ों पर, पारम्पारिक और जंगली से अधिक आधुनिक या प्रगतिशील पर, अऐतिहासिक से अधिक ऐतिहासिक पर, अमानव और लघुमानव से ज्यादा मानव की पूर्ण श्रेष्ठता में विश्वास रखा जाता है।" [1] पृ. 10

दलितों का दमन कोई नई परिघटना नहीं है, और इसपर पहली बार नहीं लिखा जा रहा है. दलितों के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, व्यावसायिक आदि प्रकार के दमन का परिणाम उनके अवचेतन को बना रहा है, और इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारक जिसकी ओर दलित सिद्धांतकारों की नजर कम ही गई वह है मनोविज्ञान. बुल्हान ए.एच. अपनी किताब Frantz Fanon and Psychology of Oppression में लिखते है कि *मनोविज्ञान ने समाज को समझने के विपरीत सामाजिक दमन में सक्रिय भागीदारी निभाते हुए अपने भरपूर विशेषाधिकारों से शांतिपूर्ण तरीके से लाभ प्राप्त किए हैं*(Bulhan, 1985 , पृ. vii) फ्रान्त्ज़ फानों इस मामले की गुत्थी थोड़ी सुलझाते हैं, और इसलिए उन्होंने कृष्णवर्णीय के पक्ष में मुख्यधारा के मनोविज्ञान को नकारते हुए, उनके लिए अलग मनोविज्ञान एवं फ्रायड के मनोविश्लेषण से अलग मनोविश्लेषण की मांग की. भारतीय दलितों में ऐसी कोई मांग उठती नजर नहीं आती इसका मतलब ही है कि भारतीय दलित चिन्तक या तो मनोविज्ञान की ताकत को नहीं जानते या फिर अब तक इन्हें इससे अलग-थलग रखा गया है. फ्रान्त्ज़ फानों से प्रेरित आशीष नंदी भारतीय सन्दर्भ में औपनिवेश काल को रेखांकित करते हुए उपनिवेशिक मानसिकता का राजनैतिक मनोविज्ञान समझाने की कोशिश द इंटिमेट एनिमी (1983) में करते हैं, किन्तु इसमें भी वह केवल अंग्रेजी शासन तक के समय का ही विश्लेषण शामिल कर पाते है. भारतीय दलितों के लिए यह इसलिए बेबुनियादी हो जाता है क्यों कि इसमें उनके पूरे समग्र चेतन एवं अवचेतन की समालोचना नहीं हो पाती.

फानों के अनुसार दुनिया में एक तबका हर समय में अपनेआपको बाकी से अलग एवं उच्च दर्शाने के लिए अन्य तबकों को दबाता आ रहा है. इन दमितों में महिला, बच्चे, बूढ़े, अपाहिज, को प्राकृतिक रूप (Vulnereble) के रूप में रेखांकित किया जाता है, और वर्गीय दमन में मालिक और गुलाम, गौरवर्णीय और कृष्णवर्णीय, सामंत और दास, आदि को देखा जाता है. हालांकि वैश्विक धरातल पर दमन प्रत्येक देशकाल में देखा जाता है, इसमें गुलामी प्रथा भी महत्त्वपूर्ण थी. परन्तु भारत के सन्दर्भ में यह बिलकुल अलग है. क्योंकि भारत में दमन के महामारी की शुरुआत वर्ण व्यवस्था से शुरू होती है और जाति व्यवस्था उसे और भी ज्यादा मजबूत बना देती है. कर्मकांडों की गिरफ्त से गैरदलितों ने दलितों के ऊपर जो अत्याचार किए वह सब आज भी दलितों के अवचेतन में भरे पड़े हैं. इसलिए आज भी जन्म के साथ पूर्वजों से जो 'सामूहिक स्मृति'[2] प्राप्त होती है, उससे वह उसे प्राप्त कर लेते हैं. समाजीकरण के साथ-साथ उस दमन में और इजाफा होते रहता है. इसका साफ़ मतलब है कि विश्व में अन्य जगहों पर ज्यादातर 'एक तरह' (one fold) का दमन दिखता है, किन्तु भारत में जो दलित है वह 'दोहरे दमन' (Two fold) का शिकार है. दलितों पर पहला दबाव है मनुष्य बनने का और दूसरा है सभ्यता के साथ चलने का दलितों के मनुष्यत्व को लगातार नकारा जाता है और साथ ही सभ्यता के अनुरूप संस्कृति से भी बाहर खदेड़ दिया जाता रहा है.

अंग्रेजों के आने से पूर्व दलितों का जिस तरह से दमन शुरू थाउसमें मुख्यत: सेवक बनाए रखने तक सीमित था. अंग्रेजों के आने के बाद व्हाईट कॉलर दबाव ने भारतीय जनमानस को सभ्यता के प्रति सजग किया जिसमें अपना अस्तित्व बनाने की कोशिश सबने की और लगातार करते आ रहे हैं. पहले दबाव से मुक्ति मिली नहीं थी कि दूसरे दबाव ने दलितों को और दबा दिया.

मनुष्य बने रहने का दबाव

प्राचीन भारतीय साहित्य में इसके कई सारे साक्ष्य मिलते हैं जिसमें दलितों का जानबूझकर अमानवीकरण किया गया है. नाम बदल गए, प्रक्रिया बदली लेकिन शोषित वही रहे। हजारों मिथकों से भरा पडा है पूरा गैरदलित साहित्य. ऐसे मिथकों के सन्दर्भ में पाओलो फ्रेरे अपनी किताब *पेड्गोजी ऑफ़ ओप्रेस्ड* में लिखते हैं कि व्यक्ति स्वतंत्रता से डरता है, फ्रेरे के अनुसार वह 'स्वतंत्रता का डर' होता है, इसलिए वह मिथक गढ़ता है जिससे संकीर्णवाद (Sectarianism) पैदा होता है चूँकि संकीर्णतावाद मिथक गढ़ता है और यहीं से अविवेक पैदा होता है और फिर यह यथार्थको एक मिथ्या (अपरिवर्तनीय) 'यथार्थ' में बदल देता है. फ्रेरे का मानना है कि 'संकीर्णतावाद, जो मतांधता पर पलता है,हमेशा नपुंसक बनाता है. (फ्रेरे, 1996-1997, पृ. 03) इस पूरी प्रक्रिया में देखे तो भारतीय दलितों के साथ भी प्राचीन काल से यही हो रहा है, उनकी स्वतंत्रता को अमान्य कर, मिथक गढ़ते हुए उन्हें नपुंसक बनाया गया. ताकि वह सवतंत्र होने से भी डरे. यही डर उनमें दलितत्व को ज़िंदा रखता है.

फ्रेरे उत्पीडित की पांच विशेषताओं पर चर्चा करते है जिसमें आत्म अवमूल्यन (सेल्फ-डेप्रिसिएशन), भाग्यवादी, निष्क्रियता, पराधीनता एवं एरिक फ्राम के हवाले शवकामी व्यवहार महत्वपूर्ण हैं(फ्रेरे, 1996-1997, पृ. 27). इन विशेषताएं दलितों के निर्धारण में खरी उतरती है. इन विशेषताओं के आधार पर दुनिया का कोई भी विज्ञान ऐसे प्राणी को मनुष्य होने का अधिकार नहीं देगा. वर्ण-व्यवस्था में दलित केवल वस्तु बनकर रह गए, सारे कानून-नियम उच्च वर्णों के हाथों में थे.

सभ्यता में समायोजित होने का दबाव

प्रबोधन के पश्चात् यूरोपीय राष्ट्रों के औपनिवेशिक लालच का शिकार भारत भी बना. अंग्रेजों के आने के पश्चात् भारत का देशज ज्ञान तितर-बितर हो गया और अंग्रेजों ने अपने व्हाईट कॉलर बर्डन के तले भारतीयों को सभ्यता के एक नए फ्रेम में जकड़ना शुरू किया आशीष नंदी जो एक राजनीतिक मनोवैज्ञानिक है, के अनुसार इसकी *"शुरुआत 1757 के प्लासी की हार से होती है और इसका अंत 1947 में अंग्रेजों के हातो भारत के स्वाधीनता प्राप्ति पर होता है."* (पृ.16) अंगेजों द्वारा लादी गयी नयी सभ्यता में दलितों को लगा की अब मुक्ति का मार्ग खुलेगा, जाति और वर्ण व्यवस्था के बंधन टूटेंगे इस धारणा से ज्यादातर समाज सुधारकों ने औपनिवेशिक

---

[1]...a world view which believes in the absolute superiority of the human over the nonhuman and the subhuman, the masculine over the feminine, the adult over the child, the historical over the ahistorical, and the modern or progressive over the traditional or the savage.

[2] मनोवैज्ञानिक कार्ल जुंग की अवधारणा के अनुसार.

काल में सामाजिक सुधार की मांग के लिए आन्दोलन किए जिसमें फुले, शाहू, पेरियार, आंबेडकर आदि अग्रणी थे. लेकिन हिंदुत्व के नाम पर कभी तिलक ने, सर्वसमावेशकता के नाम पर गांधी ने इस आंदोलन को मोड़ने की कोशिश की. इस समय में दलित नामांतरण धर्मांतरण के प्रक्रिया में व्यस्त रहे और अंत में आरक्षण और संविधानिक सुरक्षा तक सिमित रहे.लोकतंत्र में लिखित स्वतंत्रा के अलावे व्यवहार में रूढिवादिता बनी रही. केवल दमन के तरीकों में बदलाव आया.

इस समय को समझने के लिए हमारे पास दो प्रमुख टेक्स्ट है पहला फ्रान्त्ज़ फानों का *ब्लैक स्किन व्हाईट मास्क* (1952) जिसमें उसने कृष्ण वर्णीय के दमन की बात की है. दुसरा टेक्स्ट भारत के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है जिसे आशीष नंदी ने *द इंटिमेट एनिमी* (1983) के नाम से लिखा है. फ्रान्त्ज़ फानों *ब्लैक स्किन व्हाईट मास्क* में कृष्णवर्णीयों के दमन की बात करते हैं, उसमें वह जिस मालिक और गुलाम की बात करते है. उसकी मानसिकता की बात करते हुए कहते है कि ब्लैक मैन कौन है? और जवाब देते हैं कि ब्लैक मैन वह है जिसमें हीनता की एक मनोग्रंथि होती है और वह दोहरे प्रक्रिया से बनता है जिसमें दो कारक महत्त्वपूर्ण है पहला, आर्थिक और दुसरा, आत्मसातीकरण, इस पूरी प्रक्रिया को वह एक शब्द गढ़ते है Epidermalization जिसका अर्थ है, *सामाजिक-आर्थिक असमानता पर आधारित एक हीनतापूर्ण मनोग्रंथि और जिसकी इच्छा है कि 'गोरों की दौड़' में शामिल हो.*(Fanon, 1952, p. 47)

आशीष नंदी इसे विकृत राजनैतिक-अर्थशास्त्र के उत्पाद मानते हैं जो औपनिवेशवाद के बाद के अर्थतंत्र में स्थापित हुए है, इस प्रक्रिया में भी दलित औपनिवेशवादी मानसिकता के अलावा जाति व्यवस्था के अनवरत प्रभुत्व (Perpetual domination) के नीचे दबा पडा था. उसे इस दूढ में शामिल भी होना है और उस जाति के अनवरत प्रभुत्व को नकारना भी है जो उनके मनुष्य होने पर सवाल करती है.

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बी.एफ. स्केनर ने अमेरिकन सरकार पर सवाल उठाया और अपनी किताब *वाल्डेन टू* में बताया कि अमेरिका जितना खर्च वेलफेयर, शिक्षा, डिफेन्स, स्वास्थ्य आदि पर कर रही है यह सब गैरजरूरी है और इसपर जितने विभाग चल रहें है कितने लोग काम कर रहे हैं और बडी मात्र में बजट भी खर्च हो रहा है. *बुद्धि के बदले ज्ञान या निर्णय प्रक्रिया में सामान्य बोध स्थानापन्न नहीं होगा. ("knowledge is no substitute for wisdom or common sense in making decisions.")*(Skinner, 1976, p. vii) इससे बचने के लिए उनका कहना था कि नीति निर्माताओं के समिति में व्यवहार विज्ञान के भी सदस्य हो, उन्होंने यह संभावना जताई, लिखते है *"मैं सुझाव दूंगा कि यह सब हम कर सकते है और वह भी इसके बिना."(Am I suggesting that we can get along without that?)*(Skinner, 1976, p. xiv)*"क्या जरुरी है एक राजनैतिक नेता या एक नई तरह की सरकार, नहीं है लेकिन, आगे जरुरी है मानव व्यवहार का ज्ञान और उस ज्ञान के सांस्कृतिक व्यवहारकुशलता के प्रारूप को लागू करने के नए तरीके."*[3](Skinner, 1976, पृ. xvi)यह वह तरीके हैं जिससे मानवी मन पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है, और मानवी मन पर नियंत्रण ही विजय का सबसे बड़ा हतियार है.

इस नियंत्रित माहौल से भारत भी बच नहीं पाया और उसने अपने कल्याणकारी राज्य के दायित्व से हाथ खींचने शुरू किए ऐसे में दलितों के मुक्ति के मार्ग में बड़ी बाधा पैदा हो गयी है. संज्ञानात्मक विज्ञान एवं व्यवहार विज्ञान के जमाने में दलितों का मुक्ति का वह अधजला स्वप्न जो पूना पैक्ट की तरह जल रहा है.

तब सवाल उठता है कि इतने दबे कुचले लोगों का मानस्य कैसा होगा, कैसा होगा इनका अवचेतन जिसमें वह सारी बर्बरताएं और शर्मनाक व्यवहार भरा पड़ा है, हजारों सालों से इनका मन इस अवचेतन से मुक्ति की लड़ाई लड़ रहा है. समय के अनुसार मुक्तिदाता बदल गए लेकिन लड़ाई वही है जहांसे शुरू हुयी थी. कभी वह आर्यों के खिलाफ द्राविड बनकर, कर्मकांडों के खिलाफ बुद्ध बनकर, शान्ति के लिए सम्राट अशोक बनकर प्रतिकार शुरू है. इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा की भारतीय दलित दोहरे दमन का संयुक्त अवचेतन हैं, इसे अभी इतिहास पुनर्लेखन के माध्यम से निजात दिलाने की कोशिश की जा रही है, लेकिन उसमें भी केवल प्रतिष्ठा ही प्राप्त होगी न की मुक्ति.

निष्कर्ष

वैश्विक धरातल पर किसी भी समय के गुलाम, दास, सेवको, के साथ तुलना करे तो वह दोहरी प्रक्रिया से हीन होते हैं, किन्तु भारतीय दलितों की हीनता तीहरे प्रक्रिया से बनती है, समाजिक-आर्थिक असमानता, और आत्मसातीकरण के अलावे जन्म/जाति भी दलितों के स्व निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है. इसलिए भारतीय दलित तीहरे प्रक्रिया से दबते है, और इनका अवचेतन इसी तिहरे दमन से ही बनता है. इसके अलावे सभ्य समाज में सभ्य बनने की पूरी प्रक्रिया का दबाव भी इन पर हावी होता ही है.

दलित अगर मुक्ति चाहते हैं तो जरूरी है कि इन्हें इस मुक्तिगामी मार्ग से हटाया जाए, दलितों में मूल्य भरा जाए ताकि जब न्याय की बारी आए तो इनके पास भी कुछ हो जिसके लिए दलितों को कीमत चुकानी चुकानी पड़े. ऐसे में अगर दलित यह समझ रहे है की लोकतंत्र में हमें बाबासाहब के कारण संगठित होने की शक्ति, संघर्ष की जमीन और शिक्षा मिल रही है तो यह केवल भ्रम ही होगा. इस भ्रम को समझना है तो इस पूरी व्यवस्था को समझना होगा और इस व्यवस्था को समझना है, तो वर्तमान के राजनैतिक मनोविज्ञान को समझना होगा, उस पूरे वातावरण को समझना होगा जिससे दलितों का 'मानस' बन रहा है. *'बिहेवारियल इंजीनियरिंग'*[4] के समय में तो इसपर सवाल भी करना होगा कि यह कहीं मैन्युफ्रेक्चर तो नहीं किया जा रहा, क्योंकि यह *दमन का महामारी विज्ञान* (Epidemiology of Oppression[5]) हैऔर इसे बड़े ही व्यवस्थित ढंग से लागू किया जा रहा है.

संदर्भ

Bulhan, H. A. (1985). Frantz Fanon and the Psychology of Oppression. London: Plenum Press

Fanon, F. (1952). Black Skin, White Masks. (C. L. Markmann, Trans.) London , U.K.: Pluto Press.

NANDY, A. (1983). The Intimate Energy : Loss and Recovery of Self. Delhi: Oxford University Press.

\Skinner, B. F. (1976). Wlden Two (2nd ed.). Indianapolis: Hackett .

फ्रेरे, पा. (१९९६-१९९७). पेडगॉजीऑफ़ऑप्रेसड. (र. उपाध्याय, Trans.) नई दिल्ली : ग्रंथशिल्पी.

[3] What is needed is not a new political leader or a new kind of government but further knowledge about human behavior and new ways of applying that knowledge to the design of cultural practices.

[4] *बी.एफ. स्किनर*(1948) अपनी किताब *वाल्डेन टू* में इस अवधारणा को स्पष्ट करते हैं, जिसके अनुसार *बिहेवारियल इंजीनियरिंग*'मानवों के व्यवहार परिष्करण एवं नियंत्रण की विधि हैं.

[5] इस पद को जियाउद्दीन सरकार (ZiauddinSarkar) ने फ्रान्त्ज़ फानों की किताब ब्लैक स्किन व्हाईट मास्क को अग्रेषित करते हुए किया है.

योग और स्वास्थ्य

अरुण प्रताप सिंह

प्राचीन काल से ही योग और स्वास्थ्य एक दूसरे से सम्बंधित माने गए हैं. इन दोनों के बीच सम्बन्ध की व्याख्या भिन्न-भिन्न शब्दों में की जाती रही है. गीता के अनुसार में योग एक तकनीक है जिसके अभ्यास के द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन किया जा सकता और दुखों को समाप्त किया जा सकता है. योग दर्शन के अनुसार, यह एक स्थिति है जिसको प्राप्त कर लेने पर ही वास्तविक स्वास्थ्य की अनुभूति हो सकती है. स्वास्थ्य का तात्पर्य ही है - स्व में स्थित हो जाना जो योग के संपन्न होने पर ही संभव हो सकता है. भ्रमवश योग को सीमित अर्थों में समझा जा रहा है. टी. वी. पर योग के प्रचार को देखकर और उपभोक्तावाद की सीमित सोच के कारण आसन और श्वांस के नियंत्रण तक ही इसे सीमित मान लिया गया है.

वास्तविक स्व ही चेतना की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में नएनए रूपों और अनुभवों से युक्त हो सकता है. इसी कारण कहीं इसे आत्म-दर्शन के रूप में समझा जाता है तो अन्य ग्रंथों में इसे भगवान के साकार या निराकार रूपों की अनुभूति के रूप में वर्णित किया जाता है. इस तरह से योग एक प्रक्रिया है जिसका वास्तविक लक्ष्य है स्व का विस्तारण. यह विस्तारण वह नहीं है जिसमें व्यक्ति केवल अपने शरीर और मन तक ही सीमित हो जाता है बल्कि यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति सबके हित में अपना हित समझकर सम्पूर्ण प्राणिजगत और सृष्टि के लिए संवेदित हो उठता है.

अपने कर्म में कुशलता का वर्धन करने से भी यह योग की अवस्था प्राप्त हो सकती है. हम जो भी कार्य करें उसे पूरी संलग्नता पूर्वक करें और उसमे महारत हासिल करने का प्रयास करें तो यही एक दिन कर्म योग का रूप ले लेता है जिसके द्वारा व्यक्ति परम अवस्था को प्राप्त करता है. यहाँ परम अवस्था से यह आशय नहीं निकाला जाना चाहिए कि शरीर और मन के स्तर पर इसके अन्य लाभ नहीं होते है. कर्मयोग जैसी स्थिति में आने पर व्यक्ति के मानसिक तल पर आनंद की हिलोरें उठने लगती हैं. व्यक्ति अनेक तरह की मानसिक कठिनाइयों से मुक्त हो जाता है. उसके जीवन की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होकर सम्बन्ध सुधारने लगते है.

दूसरा मार्ग भावनाओं का समुचित पोषण करने का है. इसके अंतर्गत किसी प्रतीक के प्रति अपनी स्नेह भावना का विकास किया जाए या फिर समाज के पीड़ित, दलित और वंचित वर्ग की सेवा में लगाया जाए और अपने जीवन को केवल स्वयं के शरीर, परिवार तक सीमित न मानकर सारे विश्व के प्रति आराधना का भाव बनाया जाए. यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए इस योग की सच्ची सफलता इसी बात से आंकी जाती है कि किसी व्यक्ति के अन्दर संवेदना कितनी मात्रा में विकसित हुयी. इस बात को कहने का आशय यह है कि उपासना मन का एक व्यायाम है जिसका अभ्यास करके हम सभी के प्रति अपनत्व का भाव विकसित करना होता है.

तीसरा मार्ग आत्मबोध का है. इसे भी प्राप्त करने पर आत्यंतिक अनुभूति समानधर्मी होती है. यानी कि चाहे अणु में विभु खोजें या विभु में अणु. यह मार्ग कई बार मंजिल तक न ले जाकर भटका भी सकता है. शास्त्रों में इस मार्ग को तलवार की धार पर चलने जैसा ही बताया है. इस मार्ग के अंतर्गत व्यक्ति अपनी जागरूकता को पहले शरीर और मन धरातल पर बाद में उसके भी परे बढाता है. ज्ञानी सृष्टि के हर पदार्थ और अनुभूति को योग की अवस्था को पाने का माध्यम मानता है वह सभी अवस्थाओं के प्रति जागरूकता को प्राप्त करते हुए'साक्षी' की स्थिति को प्राप्त करता है.

चौथा मार्ग, शरीर और मन के परिष्कार और संतुलन का है जिसके अंतर्गत आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि को सम्मिलित किया जाता है इससे सम्बंधित गतिविधियाँ और दर्शन व्यापक रूप से विख्यात हो चुके हैं. आसन और प्राणायाम के द्वारा 'बाडी फिगर' ठीक करना एक मान्यता बन चुकी है. यह मान्यता अनेक शोध निष्कर्षों से पुष्ट है. सूर्य नमस्कार और उसके अन्यान्य रूप आज के समय में फिल्मस्टार और खिलाड़ियों के बीच लोकप्रिय हो चुके हैं.

शोध के परिणाम यह दर्शाते हैं कि योगाभ्यास करने से अवसाद, चिंता तनाव और अनिद्रा जैसी अनेक मानसिक समस्याओं मेंकमी आती है. इसके विविध अभ्यासों से संतुलन, शान्ति तथा शरीर और मन में सहजता उत्पन्न होती है. तनाव का कैंसर, हृदय रोग, डायबिटीज और अन्य कई बीमारियों से सम्बन्ध को देखते हुए योग से तनाव का प्रबंधन न सिर्फ भावनात्मक स्थिति की बेहतरी के लिए है बल्कि बहुत सारे रोगों का भावी बोझ भी समाप्त किया जा सकता है. इसका अभ्यास करने से अनेक भावनात्मक जटिलताएँ सुलझ सकती हैं. कुछ शोध अध्ययन तो यह भी दर्शाते हैं कि इसके अभ्यास से नशे की आदत समाप्त होकर शरीर के प्रति संभाल का भाव विकसित होता है.

योग के माध्यम से आप अपनी इन्द्रियों की सुखानुभूति की क्षमता में वृद्धि ला सकते हैं. योगाभ्यास के द्वारा दैनंदिन जीवन के विभिन्न अनुभवों में अभिवृद्धि ला सकते हैं. आप खाने के स्वादको बढ़ा सकते है. आप सुनने की, देखने की क्षमता को बढ़ा सकते हैं. आप को स्पर्श का सुख अधिक मिल सकता है. आपके संबंधों में माधुर्य का विकास हो सकता है. चिड़ियों का चहचहाना, धूप का आनंद, हवा का स्पर्श सब कुछ अधिक सुखकर हो सकता है अगर योग को अपना लिया जाए.

स्वास्थ्य में बेहतरी के लिए योग को अपनाना कई दृष्टियों से लाभकारी है. इसके द्वारा शारीरिक और मानसिक दोनों ही तरह के

फायदे लिए जा सकते हैं. स्वास्थ्य की अनेक समस्याएं एक साथ हल की जा सकती हैं. यह हमारी अपनी संस्कृति में व्यापक रूप से समृद्ध रहा है। अत: इसे अपनाना अधिक आसान है. स्वास्थ्य की देखरेख पर किये जा रहे खर्च में कुछ ही महीनों में कमी आ सकती है. यह जीवन के प्रति हमारे बोध को विकसित करता है अत: यह शोधार्थियों से लेकर लेखकों, कवियों, साहित्यकारों सभी के लिए उपयोगी हो सकता है. चूंकि इसका कोई साइड इफेक्ट नहीं बल्कि सकारात्मक इफेक्ट ही होता है अत: बेखटके इसका उपयोग करके अनेक रोगों से मुक्ति पायी जा सकती है.

स्मरणीय है कि योग का उपयोग किये जाने से पहले कई अभिवृत्तियों से सम्बंधित चुनौतियों से हमें निपटना होगा. योग को किसी सम्प्रदाय विशेष से न जोड़कर एक वैज्ञानिक विधि के रूप में समझना ठीक होगा. वैसे भी यह अलग बात है कि योग का भारतीय परिवेश में अधिक विकास हुआ है किन्तु अगर गहरी समीक्षा की जाए तो योग के तत्व अन्य अनेक संस्कृतियों में भी देखने को मिलते हैं. उदाहरण के लिए नमाज अदा करने के लिए की जाने वाली मुद्राएँ, कुरआन की आयतों के प्रभाव, ईसाई सम्प्रदाय में सेवा और मन्त्र के विचार, तथा अन्यान्य सम्प्रदायों में योग से सम्बंधित अनेक विचार हैं. ऐसे में यह विडम्बनापूर्ण है जबकि योग के प्रति पंथनिरपेक्षता के नाम पर योग को फैलाने के कई प्रयासों की कई बार आलोचना की जाती है.

संक्षेप में, हमें यह समझना होगा कि योग के विभिन्न रूपों को हम अपनी सुविधानुसार अपना सकते है. आप अगर सुबह कुछ घंटे योगासन और प्राणायाम को नहीं दे सकते तो कोई बात नहीं अपने कार्य में दत्तचित्तता व कौशल को बढ़ाकर ही आप योग को अपना बना सकते हैं. अगर आप आसन प्राणायाम को थोड़ा बहुत अपना पाते है तो सोने में सुहागा होगा. आपका तन-मन सुधरेगा, धन बचेगा और जीवन चुनौतियाँ सुखकर लगने लगेंगी योग की इसी व्यापक दृष्टि के साथ, इस विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के द्वारा विनोबा योग मंडल की स्थापना की गयी है. योग के इस अभियान में सहभागी बनने के लिए आपका आमंत्रण है. ❀❀

शब्द : सत्ता और स्वाधीनता

मदन सोनी

शब्द : सत्ता और स्वाधीनता'। इस किंचित अमूर्त, या कहें अतिव्याप्त से पद का जो अभिप्राय मैं समझ पा रहा हूँ, वह यह है कि राजसत्ता के बरक्स या उसके समक्ष, शब्द के सन्दर्भ में हमारी स्वाधीनता की क्या स्थिति है? और शब्द क्योंकि अभिव्यक्ति का माध्यम है, इसलिए कुल मिलाकर राजसत्ता के बरक्स या उसके समक्ष हमारी अभिव्यक्ति की स्वाधीनता की क्या स्थिति है? इस दृष्टि से देखें तो यह प्रश्न बहुत प्रासंगिक फ़िलवक्त मुझे नहीं लगता। हमारे लोकतन्त्र के इतिहास में ऐसे कुछ दुर्भाग्यपूर्ण क्षण (जैसे कि आपातकाल) अवश्य आये हैं, जब यह प्रश्न बहुत प्रासंगिक हो उठा था, लेकिन आज राज्यसत्ता का जो भी रूप है, उसकी ओर से हमारी अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के लिए कम से कम सीधे-सीधे कोई गम्भीर ख़तरा नज़र नहीं आता। बेशक ऐसी ताक़तें हैं (और उनको अब राज्यसत्ता का परोक्ष समर्थन भी मिला हुआ है), जो लगभग नियमित रूप से लेखकों-कलाकारों की स्वाधीन अभिव्यक्ति पर हिंसक तरीक़े से अंकुश लगाने की कोशिशें करती रहती हैं, और आने वाले समय में इनके और अधिक संगठित, और अधिक ताक़तवर, और अधिक आक्रामक होने की भी प्रबल सम्भावनाएँ हैं जिनके प्रति हमें सचेत रहना अनिवार्य है, लेकिन कुल मिलाकर राज्यसत्ता हमारी स्वाधीनता का, जैसा कि मैंने कहा, सीधा प्रतिपक्ष नहीं है। उल्टे अब शायद हमें स्वयं राज्यसत्ता के, लोकतान्त्रिक राज्यसत्ता के, अस्तित्व पर, या, कम से कम, संविधान के दायरे में उसकी स्वाधीन गति पर, मँडराते उस बाज़ार और पूँजी के ख़तरों की चिन्ता करना ज़रूरी हो गया है जो अपने दानवीय भूमण्डलीय विस्तार तथा लगभग स्वचालित, अनियन्त्रणीय विक्षेपों के साथ स्वयं इस राज्यसत्ता का अनुशासन और प्रबन्धन कर रही है। देखा जाय तो शब्द की स्वाधीनता का असल और सबसे बड़ा प्रतिपक्ष यही है : पूँजी और बाज़ार का दानवीकृत भूमण्डलीय विस्तार और सूचना प्रौद्योगिकी का विश्वव्यापी तन्त्र। और निश्चय ही, वे सुपर पॉवर भी जो इनके साथ उस दुष्चक्रपूर्ण सहअपराधिता के रिश्ते में बँधे हुए हैं जिसके अन्तर्गत वे एक दूसरे से शक्ति हासिल कर एक-दूसरे की शक्तियों में इज़ाफ़ा करते हैं। हमारी आत्माभिव्यक्ति का माध्यम जो रचनात्मक शब्द यहाँ हमारे सरोकार का विषय है, ये शक्तियाँ उस शब्द का सबसे बड़ा प्रतिपक्ष इसलिए हैं क्योंकि अव्वल तो इन महाशक्तियों की दुनिया में वैसे भी इस शब्द की अपनी सचाई को सुने जाने की कोई गुंजाइश नहीं है, दूसरे ये शक्तियाँ शब्द और अर्थ के बीच के रिश्तों का अपने राजनैतिक, आर्थिक हित में नियमन, व्याख्या, पाठ, कुपाठ, छलयोजना, विनियोजन, दुर्विनियोजन आदि कर उसका अतिरेकपूर्ण और अकल्पनीय क्षिप्रता के साथ विश्वव्यापी प्रसार करते हुए उस सार्वजनिक मानस को प्रभावित करने की अकूत क्षमता से भी लैस हैं जो हमारे रचनात्मक शब्द की भी कर्मभूमि है। एक गहरे और दूरगामी प्रभाव के स्तर पर इस शब्द के अप्रासंगिक, अजनबी, अकेले हो जाने की, उसको हाशिये पर धकेल दिये जाने की, इतनी गम्भीर सम्भावना संस्कृति के इतिहास में शायद पहली बार पैदा हुई है – भले ही हम ब्लागों, फ़ेसबुकों, ई-पत्रिकाओं, साहित्य-महोत्सवों आदि में उमड़ती प्रतीत होती तथाकथित पाठकों, साहित्य-प्रेमियों की भीड़ से कितने ही आत्मतुष्ट क्यों न हों। क्योंकि यह है अन्तत: भीड़ ही। वह रचनात्मक शब्द के साथ अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया में अद्वितीय, विशिष्ट या वैयक्तीकृत होकर जन्मा *पाठक* नहीं है। साहित्य या उसके पठन के सन्दर्भ में यह 'भीड़' किसी क्रान्तिकारी या सकारात्मक परिवर्तन की सूचक नहीं है। वह इन मंचों के सन्दर्भ में भी, है उन्हीं तत्वों से आकर्षित जिनसे वह स्वभावत: हमेशा से आकर्षित होती आयी है : पल्प, मीडियॉक्रिटी, सनसनी, गॉसिप, तात्कालिकता, फैशन,

लोकप्रियता आदि आदि, जो ये मंच उसको कहीं अधिक तादाद में और अधिक आसानी से सुलभ कराते हैं। अन्यथा, इस कचरे के भीतर जो बहुत थोड़ा-सा श्रेष्ठ या बेहतर है, वह अब भी उन्हीं लोगों के सरोकार का विषय है, जो इनको इन मंचों के बावजूद अपना विषय बना सकते हैं और जिनकी संख्या इन मंचों के बावजूद हमेशा की तरह उतनी ही थोड़ी है।

प्रश्न, लेकिन, दूसरा है और वह यह है कि जिन थोड़े-से लोगों के सरोकार का विषय यह थोड़ा-सा श्रेष्ठ या बेहतर है उसके साथ इन लोगों के रिश्ते की प्रकृति क्या है? क्या इसमें भी वही अल्पता नहीं है? आज हिन्दी में विमर्श की क्या स्थिति है– तथाकथित स्त्री-विमर्श, दलित-आदिवासी-विमर्श आदि के बावजूद? मैं आज से पच्चीस-तीस बरस पहले के उस अपेक्षाकृत आविष्ट वातावरण को याद करता हूँ जब अज्ञेय, श्रीकान्त वर्मा, विजयदेवनारायण साही, रघुवीर सहाय, मलयज, नेमिचन्द्र जैन, निर्मल वर्मा, नामवर सिंह, रमेश चन्द्र शाह, अशोक वाजपेयी समेत तत्कालीन मँझली और युवा पीढ़ी के अनेक लेखक, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से परस्पर प्रतिश्रुत, प्रतिकृत होकर एक साथ सक्रिय थे। उस आविष्ट वातावरण का एक महत्वपूर्ण साक्ष्य भारत भवन, भोपाल के तत्कालीन परिसंवादों और *पूर्वग्रह*, *पहल* आदि पत्रिकाओं के तत्कालीन अंकों में देखा जा सकता है। इन परिसंवादों में हुई बहसों में, औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही स्तरों पर अरसे तक जारी रही, और स्वयं भारत भवन की पहल पर शुरू की गयी, एक बहस का विषय वह भी था, जो हमारे इस परिसंवाद के मुख्य विषय में साफ़-साफ़ ध्वनित है : सत्ता और संस्कृति। पाठ और उसके निकट सन्दर्भों को लेकर उस तरह के गम्भीर प्रश्न, बहस की वैसी जीवन्तता, उत्कटता और सजग विश्लेषणपरकता, विचारों के साथ मानों स्वयं लेखक के अस्तित्व के दाँव पर लगे होने की वैसी उद्विग्नता, पॉलिमिक्स की वैसी ऊष्मा, मुझे नहीं लगता कि हमारे आज के साहित्यिक वातावरण में कहीं पर है। क्षुद्रताओं की खरपतवार तब भी थी, लेकिन तब वह एक स्वाभाविक-से सहउत्पाद के रूप में थी, मुख्य फसल के रूप में नहीं थी।

उस वातावरण के आवेश का कुछ श्रेय निश्चय ही शीत युद्ध को, और उस विचारधारा के प्रभावी होने को, भी जाता है, जो हालाँकि तब अपने स्रोत पर बुझने-बुझने को थी, लेकिन जिसका अहसास या पूर्वानुमान हमारे लेखकों को शायद नहीं था; उसकी दीप्ति वामपन्थी लेखक संगठनों को हमेशा की तरह अनुप्राणित करती हुई, और उसके नाम पर हुई नृशंशताओं के प्रति हम में से कुछ की दृष्टि को अन्धाकर देने के स्तर पर चौधियाती हुई, कुछ ज़्यादा ही तीखेपन के साथ, हमारे बीच मौजूद थी। यह भी सच है इन चीज़ों ने तर्काभासपूर्वक पक्ष और विपक्ष का दोटूक विभाजन किया हुआ था। किन्तु साहित्य के अपने तर्क से उस तर्काभास को भेदना, उस विभाजन के मिथ्यात्व को उजागर करना, भी उसी तत्कालीन विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम था। वस्तुत: उस वातावरण के आवेश का कहीं ज़्यादा श्रेय साहित्य के तर्क को, साहित्य के सत्याग्रह को, या, हम चाहें तो कह लें, शब्द की सत्ता को, अग्रभूमि पर लाने को जाता है।

आज हमारे यहाँ शब्द की सत्ता और विचारधारा दोनों ही स्तरों पर मन्दी का वातावरण है। विचारधारा को लेकर जो अवसाद की-सी स्थिति है (हालाँकि कई लेखक इसको स्वीकार करते नहीं लगते) वह क्या इस बात का स्पष्ट संकेत नहीं है कि अतीत में उसको लेकर हमारे अन्दर उत्साह का जो माहौल था, वह तत्त्वत: विचारधारामूलक न होकर उसके उन सत्ता-स्रोतों से जुड़ा हुआ था, जो अब सूख चुके हैं। अन्यथा पिछले दशकों में हमने उसकी मूलगामी आलोचना, और इस तरह आत्मालोचना, विकसित कर विश्व की नयी राजनैतिक-सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसके पुनरीक्षण के वैसे कोई प्रयत्न किये होते जैसे वे दुनिया में अन्यत्र कई बौद्धिकों ने किये हैं।

यह (आत्म) आलोचना और पुनरीक्षण आज शायद पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरी है – वैश्विक परिस्थितियों के सन्दर्भ में भी और हमारी अपनी परिस्थितियों के सन्दर्भ में भी। शीतयुद्धोत्तर युग आज महाशक्तियों के द्विविभाजन की समाप्ति से बहुत आगे अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद, परमाणु अप्रसार, शान्ति-स्थापना, आदि के नाम पर खड़े किये गये उन अन्तरराष्ट्रीय और अपने में बेहद सन्दिग्ध क़िस्म के रणनीतिपरक, सैन्य गठबन्धनों के मुकाम पर है जिनमें विचारधारा दूर-दूर तक विचारणीय नहीं है – इन गठबन्धनों में शामिल उस देश के लिए भी जो आज भी अपनी हुकूमत के आधार में उसकी विरासत को जैसे-तैसे क़ायम रखे हुए है, या क़ायम रखे होने का दावा करता है। भूमण्डलीकरण ने जहाँ सरहदों को खोला है, लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रियाओं को गति दी है, पारदर्शिता और व्यापक साझेदारी की सम्भावनाओं में वृद्धि की है वहीं दूसरी तरफ़, इसी दौर में, बाज़ार और अर्थतन्त्र के वर्चस्व, सामाजिक असमानता, एक्स्क्लूज़न, मार्जिनलाइज़ेशन, भुखमरी, महामारियों और पर्यावरण सम्बन्धी आपदाओं, और 'आतंकवादी' हिंसा (जिसमें सेक्युलर और लोकतान्त्रिक कहे जाने वाले राज्यों द्वारा की गयी हिंसाएँ अनिवार्यत: शामिल हैं) आदि में भी असाधारण वृद्धि हुई है। इन तमाम परिस्थितियों के बरक्स कोई संगठित राजनैतिक प्रतिपक्ष नहीं दीखता।

जहाँ तक हमारी अपनी परिस्थिति का प्रश्न है, वह इन अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों में तो साझा करती ही है, हमारी अपनी अन्दरूनी समस्याएँ, सामाजिक और बौद्धिक जीवन के अन्तर्विरोध और भी बड़ी चुनौती प्रस्तुत करते हैं। तथाकथित भूमण्डलीकरण में हमारी अपनी भागीदारी कहीं ज़्यादा कलंकित है, उन अनेक कालिखों से जिनमें साम्प्रदायिक उन्माद, जातिवाद, विशाल बाँधों, विनाश की सम्भावनाओं से युक्त संयन्त्रों और कार्पोरेट घरानों के संस्थापनों की स्थापना के नाम पर स्थानीय आबादियों के विस्थापन, दलितों, आदिवासियों और स्त्रियों के प्रति हिंसा, कश्मीर, पूर्वांचल, छत्तीसगढ़, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि प्रदेशों में अपरिभाषित या वाकक्छलपूर्वक परिभाषित अन्यान्य नामों की ओट में अन्यान्य स्तरों पर जारी हिंसा, किसानों की आत्महत्याएँ, शिक्षा, चिकित्सा, भोजन और आवास जैसी बुनियादी और अनिवार्य चीज़ों से विशाल आबादी का वंचित होना, राजनेताओं और नौकरशाहों के अकूत भ्रष्टाचार आदि दर्जनों चीज़ें शामिल हैं। इस परिस्थिति के प्रति, जो हमारी मानसिक स्वाधीनता की अनिवार्य पृष्ठभूमि और अनिवार्य प्रतिपक्ष है, हमारी बौद्धिक प्रतिश्रुति बहुत ढीली और सम्भ्रमित है। क़ायदे से उसको बौद्धिक भी शायद ही कहा सके। वह इस परिस्थिति को लेकर राजनेताओं और मीडिया के रेह्टॉरिक से बहुत भिन्न नहीं है। उसमें इतना सामर्थ्य और धैर्य नहीं दीखता कि वह इस परिस्थिति को इसकी तात्कालिकता और तद्देशीयता से मुक्तकर, और अपनी परम्पराओं और आधुनिक मूल्यों दोनों ही के प्रति विह्वल, या प्रमाद और विस्मृति से ग्रस्त हुए बग़ैर, दोनों में से किसी को भी आलोचना-शिथिल ढंग से स्वीकार या अस्वीकार किये

बग़ैर, हमारे संस्कारों, संवेदनों और इनके आपसी रिश्तों के जटिल विन्यास के सन्दर्भ में गहराई से इसको समझने का यत्न करे। जबकि इस परिस्थिति के वैचारिक प्रतिपक्ष की सम्भावना, जिसमें स्वयं इस विचार को स्वाधीन स्वरूप दे सकने वाले मुहावरे और प्रत्ययों की सम्भावना अनिवार्यत: निहित है, शायद इसी प्रयत्न में हो सकती है। और इस बात को सुनिश्चित करने में कि यह विचार 'विचारधारा' न हो, यानी, किसी यूटोपिया को उपलक्षित करता हुआ और अन्तत: उस यूटोपिया तथा उसकी सिद्धि के प्रयत्नों की नियति से बँधा हुआ न हो । अन्य विचारों को अपने परिसर में बिना शर्त, कृतज्ञतापूर्वक आने देता हुआ, उनसे गुफ्तगू और ज़िरह करता हुआ, उनकी रोशनी में आत्मविमर्श करता हुआ, एक निरन्तर सम्भवनशील विचार।

जब तक हमारा शब्द - और यहाँ मैं सिर्फ़ 'आलोचनात्मक', 'विमर्शात्मक' शब्द की बात नहीं कर रहा हूँ, उसमें कविता और गल्प भी शामिल हैं - जब तक हमारा शब्द इस तरह के संवेगों से युक्त विचार से अनुप्राणित नहीं होता, तब तक वह एक अशक्त शब्द ही होगा। तब तक 'शब्द की सत्ता' जैसा पद अर्थहीन होगा। हिन्दी का हमारा समकालीन लेखन, अगर अशोक वाजपेयी जैसे कुछेक उदाहरणों को छोड़ दें तो, शक्ति के उस स्रोत को पहले ही गँवा चुका है, जो उसमें उस ऐन्द्रियता के कारण था जिसके हमारे निकट अतीत के उदाहरणों में शमशेर की कविताएँ और निर्मल वर्मा कहानियाँ शामिल हैं। और हालाँकि ऐन्द्रियता और वैचारिकता के बीच किसी तरह का विरोध अनिवार्य नहीं है, जैसा कि हम प्रसाद, निराला, अज्ञेय समेत अनेक लेखकों के उदाहरणों से सहज ही समझ सकते हैं, तब भी अगर यह हमारे समय में विचार का अतिरिक्त दबाव है जिसके नतीजे में हमने ऐन्द्रियता की उक्त क़ीमत चुकायी लगती है, जैसा कि वैचारिकता के प्रति इस लेखन की उन्मुखता और प्रवणता को देखकर लगता है, तो यह विचार भी इस लेखन की शक्ति का स्रोत नहीं बन सका है। ज़्यादातर मामलों में वह विचारधारा का हैंगओवर या ज़्यादा से ज़्यादा विचाराभास ही है। कुँवरनारायण की एक पंक्ति का सहारा लेते हुए कहें तो, यह लेखन इस बात का संज्ञान तो अवश्य लेता है कि 'हमने दस सिरों से सोचने और बीस हाथों से पाने की कोशिश में इस दुनिया को बेहद मुश्किल बना लिया है' लेकिन स्वयं इस लेखन में यह दुनिया ऐसे किसी जटिल रूप में उभरने की बजाय, हर बार, एक सिर से सोची गयी दुनिया के रूप में ही उभरती लगती है। यह स्थिति कुछकुछ देरीदा द्वारा प्रयुक्त अवधारणाओं 'ऑटोइम्यूनिटी' (अपनी ही इम्यूनिटी के प्रति इम्यून हो जाना) और 'फ़ार्माकोन' (एक ग्रीक शब्द जिसका अर्थ ओषधि भी है और ज़हर भी है) के तुल्यरूप है : मानों अतिवैचारिकता, या बहुदिशात्मक, अन्तर्विरोधी, विरोधाभासी गति के प्रति, संश्लिष्टता, सख़्ती और अस्थिरता के प्रति विचार की यह प्रतिरोधकता (इम्यूनिटि) स्वयं इस दुनिया की जटिलता के प्रति उसको प्रतिरोधक (इम्यून) बना देती है। 'दस सिरों से सोचने...' के बिम्ब से व्यंजित निरूपण या निदान क्या स्वयं उस बीमारी का कारण नहीं है जिसका कि वह निरूपण या निदान है?

हम लेखक अक्सर इस बात पर, उचित ही, क्षोभ व्यक्त करते हैं कि लोगों ने पढना बन्द या कम कर दिया है। लेकिन यह शिकायत हमें, एक ख़ास अर्थ में, यानी, एकाग्र, सूक्ष्म और आत्मीय-किन्तु-आलोचनात्मक पठन (क्लोज़ रीडिंग) के अर्थ में, क्या स्वयं अपने आप से नहीं करना चाहिए? 'क्लोज़ रीडिंग' सिर्फ़ उस चीज़ की नहीं जिसे हम 'पाठ' कहते हैं, और सिर्फ़ उनके द्वारा नहीं जिनको हम 'आलोचक' कहते हैं। 'क्लोज़ रीडिंग' से यहाँ मेरा अभिप्राय प्रथमत: उन पाठ-सन्दर्भों के पठन से है जिनमें मनुष्य और उसको घेरती मानवीय और अ-मानवीय सृष्टि का वह सब कुछ शामिल है जिसपर हमारा सृजनात्मक लेखन एकाग्र होता है। मनुष्य और उसकी इस सृष्टि के, उसके भावों और अनुभावों के, हमारे पठन की अल्पता हमारे लेखन में उससे बहुत कम शायद नहीं होगी जितने की शिकायत हम अपने लेखन के सन्दर्भ में अपने पाठकों या आलोचकों से करते हैं। इस अल्प पठन का सबसे प्रामाणिक साक्ष्य हम अपने अपेक्षाकृत बेहतर उपन्यासों में देख सकते हैं, जिनमें इनके पात्रों की भावनात्मक, मानसिक, कर्मपरक दुनिया और उनका नैसर्गिक, भौतिक, आध्यात्मिक परिवेश आदि सब कुछ बेहद इकहरे और सरलीकृत रूप में उभरते हैं।

और 'क्लोज़ रीडिंग' के विस्तार में मैं यहाँ इसके उपर्युक्त अभिप्रायों के साथ-साथ शब्द और अर्थ के उन आपसी रिश्तों के अभिप्रायों को भी शामिल करने का आग्रह करूँगा जो 'सा-हित्य' शब्द में निहित हैं, जिनमें, वागीश शुक्ल की व्याख्या के सहारे कहें तो, शब्द और अर्थ के बीच 63 के आँकड़े का-सा रिश्ता भी शामिल है और ३६ के आँकड़े का-सा रिश्ता भी शामिल है : एक, जिसमें दोनों एक दूसरे से मुखातिब होकर, और दूसरा, जिसमें दोनों एक दूसरे से मुँह फेरे, एक दूसरे को सहते हुए, एक दूसरे के सहित हैं। जिन शब्द-शक्तियों की व्यापक चर्चा हमारे यहाँ की गयी है, और जो रस और ध्वनि जैसी विशाल संरचनाओं के आधार में हैं हम याद करें, वे शब्दार्थ-सम्बन्ध के इन्हीं विक्षेपों से उत्पन्न शक्तियाँ हैं। इन विक्षेपों का क़रीबी पठन निरा तकनीकी पठन नहीं होगा, अगर हम शब्द और अर्थ दोनों ही स्तरों पर जारी दूषण की भयावह प्रक्रिया को लेखे में लें तो।

शब्द में सत्ता की सामर्थ्य, सत्ता शब्द के तमाम अर्थों में, न तो उस विचार के बग़ैर सम्भव लगती है, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है, न ही इस 'क्लोज़ रीडिंग' के बग़ैर। इनसे शक्ति अर्जित करके ही यह सत्ता शायद अन्य दमनकारी, उत्पीड़क, स्वाधीनता-विरोधी सत्ताओं का प्रतिपक्ष बन सकती है– एक ऐसा प्रतिपक्ष जो, रघुवीरसहाय के शब्दों में, सत्ता के तिलिस्म को भले न तोड़ सके, लेकिन उसके भीतर साहस और सार्थकता का अहसास जगा सकता है। शब्द की यह सामर्थ्य उसको उसके अकेलेपन, अजनबीपन, हाशिये पर होने आदि से मुक्ति नहीं दिला देगी, लेकिन वह इन तमाम चीज़ों को एक गरिमा और गौरव प्रदान करेगी। तब वह उसके भीतर उस अवकाश को पैदा कर सकेगी जिसको मम्मट ने 'अनन्यपरतन्त्र'(ता) कहा है, और जिसको हम स्वाधीनता कह रहे हैं।

शिक्षा विमर्श का साहित्यिक कोण

ऋषभ कुमार मिश्र

निःसंदेह शिक्षा हमारे दैनिक जीवन में गुंथी हुई है। हमारे समाजीकरण का ताना-बाना इस प्रकार का है कि शिक्षा की प्रक्रियाएं, संस्थाएं और माध्यम हमारी चेतना के अकाट्य हिस्से बन जाते हैं। आधुनिक जीवन में शिक्षा एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है जो सप्रयास और परिभाषित लक्ष्यों की ओर उन्मुख होता है। यह उसकी भविष्य की संभावनाओं को उजागर करने का माध्यम बनता है। अस्मिता को परिभाषित करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इस अस्मिता में जहाँ यह भाव होता है कि 'हम कौन है?' वहीं यह भी भाव होता है कि 'हम कौन नहीं है'? इसे तय करने में शिक्षा की खास भूमिका हो जाती है।

शिक्षा, व्यक्ति और समाज के आपसी रिश्ते को समझने के लिए हम कई तरह के लेंसों का उपयोग करते हैं। यह लेंस सैद्धान्तिक प्रारूप में दर्शन, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान कहीं के हो सकते हैं। वे विभिन्न ज्ञानानुशासनों और उनके शिक्षणशास्त्र से भी जुड़े हो सकते हैं। इनके द्वारा हम सामाजिक यथार्थ को पकड़ने और उसे विश्लेषित करने की कोशिश करते हैं। जिस सामाजिक यथार्थ को हम पकड़ने की कोशिश करते हैं उसके आख्यान के रूप में 'साहित्य' को भी देख सकते हैं। हालांकि साहित्य में कल्पना की भी पूरी संभावना होती है फिर भी उसमें ऐसी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जो सामाजिक यथार्थ को समझने का माध्यम बन सकती है। इस प्रकार से साहित्य भी एक ऐसा माध्यम हो सकता है जिसके द्वरा शिक्षा, व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध को समझा जा सके।

यह विचारणीय है कि किस प्रकार से शिक्षा, समाज और व्यक्ति से जुड़े सरोकारों को समझने में साहित्य एक माध्यम बन सकता है। यह ध्यान रखना होगा कि यह आवश्यक नहीं है कि साहित्य की रचना ऐसे ही किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई हो। बल्कि यहाँ साहित्य हमारे लिए कच्ची सामग्री है जिसकी व्याख्या शिक्षा के सरोकारों के नजरिए से की जानी है। साहित्य, साहित्यकार द्वारा निर्मित एक ऐसा आख्यान है जिसमें देश-काल का बहाव साहित्यकार की दृष्टि से वर्णित होता है। लेकिन यह आख्यान हमारे लिए एक दस्तावेज भी होता है जो देश-काल विशेष की परिस्थिति को समेट कर शब्दों के माध्यम से बाँधने का प्रयास करता है। इसमें स्थापित शिक्षा के स्वरूप, इसकी भूमिका और व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को पकड़ने में साहित्य का प्रयोग कर सकते हैं। जैसा कि अभी कहा गया कि साहित्य, साहित्यकार द्वारा निर्मित होता है तो सवाल यह है कि इसमें पाठक की क्या भूमिका होती है? पाठक साहित्यकार की इस निर्मिति को अपने कोण से देखकर अर्थग्रहण करता है। पाठक के देखने का कोण उसकी पृष्ठभूमि और साहित्य को देखने के उसके नजरिए पर निर्भर करती है। साहित्य का अध्ययन उसके नजरिए को दिशा भी देता है। साहित्य के निर्माण-विनिर्माण-अर्थबोध की प्रक्रिया इसके महत्व को और भी बढ़ा देती है।

शिक्षणशास्त्रीय उद्देश्यों की दृष्टि से साहित्य का सर्वाधिक प्रयोग भाषा-शिक्षण के लिए होता है, जहाँ यह साक्षरता का उपकरण और भाषिक कौशलों के विकास का माध्यम होता है। इसी प्रकार स्कूली स्तर पर साहित्य को नैतिक शिक्षा से जोड़ देते हैं। इस प्रकार के अभ्यास में पढ़ने/पढ़ाने के बाद पूछ लिया जाता है कि आपने इससे क्या सीखा? यहाँ 'सीखना' पाठक पर एक माँग आरोपित करता है कि वह कुछ महत्वपूर्ण नियमों या निहितार्थों का उल्लेख करे। यह माँग एक ओर साहित्य के बहु निर्वचन को सीमित करती है तो दूसरी ओर पाठक की भूमिका को भी सीमित कर देती है।

एक अन्य प्रयोग विषय से संबंधित ज्ञान देने के लिए भी किया जाता है। जैसे- स्वतंत्रता संग्राम को समझने के लिए उस समय के आख्यानों का उपयोग करना, स्त्री विमर्श को समझने के लिए स्त्री लेखन का विश्लेषण करना आदि। इस उपागम के ही एक विस्तार के रूप में शिक्षा के साहित्य को भी देख सकते हैं जहाँ साहित्य को पढ़ना एक सोद्देश्य गतिविधि है, जिसका उद्देश्य एक ऐसे फलक को उजागर करना है जिसके द्वारा शिक्षा और समाज के सरोकारों के प्रति गहन अन्तर्दृष्टि का विकास हो सके। साहित्य की एक और विशेषता है जिसका उपयोग इस प्रयास में किया जा सकता है। साहित्य लोक से जुड़ा होता है और वह लोक मन और लोक संस्कृति को समझने का एक अच्छा माध्यम हो सकता है। शिक्षा, सत्ता और वर्चस्व के विमर्श को समझने में 'लोक' की अदृश्यता एक चुनौती है। साहित्य के द्वारा इस अदृश्य लोक को दृश्य किया जा सकता है जो इस प्रकार के संप्रत्ययों के तह तक जाने में मदद करेगा। इस चर्चा में बाल साहित्य की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। यह सीधे तौर पर मानव विकास के पहलुओं को समझने में मदद करेगा। इस कोटि में दो प्रकार के साहित्य आएंगे। प्रथम, स्वयं बच्चों द्वारा लिखे। इनका प्रयोग विकासात्मक सम्प्रत्ययों-संज्ञान, संवेग, बहुबुद्धि और सृजनात्मकता को समझने और विकासात्मक पहलुओं को समझने में किया जा सकता है। दूसरा बच्चों के केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य। इसके द्वारा वृहत्तर सामाजिक ढाँचे में 'बच्चे' की भूमिका को समझा जा सकता है।

इस कड़ी का अगला सवाल होगा कि शैक्षिक विमर्शों को समझने के लिए क्या पढ़ा जाए? इस सम्बन्ध में बताना चाहूँगा मदन सोनी जी के साथ एक अनौपचारिक चर्चा में उन्होंने कहा था कि यह तय करना कि क्या पढ़ा जाए और क्या न पढ़ा जाए एक महत्वपूर्ण सवाल है। यह सवाल इस प्रसंग में उठता है कि शिक्षा के साहित्य के रूप में क्या चुना जाए और उसे चर्चा का हिस्सा किस प्रकार से बनाया जाए। इन प्रश्नों के जवाब के लिए अपने मैं अपनी कक्षा में किए गए इस प्रकार के एक प्रयोग का उदाहरण दूँगा।

मैंने अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को अब तक पढ़ने के लिए पुस्तकों के दो समुच्चय दिए। प्रथम समुच्चय में विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए उन पुस्तकों को दिया जिसकी विषय वस्तु प्रत्यक्षतः शिक्षा से जुड़े हुई थी। इस क्रम में उन्होंने तोतोचान, कवि का स्कूल, अध्यापक, असफल स्कूल,

दिवा स्वप्न, चूड़ी बाजार में लड़की और समरहिल आदि पुस्तकों को पढ़ा। इन पुस्तकों को पढ़ने के लिए विद्यार्थियों को उन्हीं के सुझाव से एक सप्ताह का समय दिया गया। इसके बाद प्रत्येक विद्यार्थी ने पठित पुस्तक पर संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण दिया। इस प्रस्तुतीकरण से समूह को प्रत्येक पुस्तक के विषयवस्तु से परिचय हुआ। अगले चरण में प्रत्येक विद्यार्थी ने पठित पुस्तक की समीक्षा लिखी। इस समीक्षा के द्वारा एक ओर जहाँ वे पाठक की दृष्टि से अर्थ निर्माण और विश्लेषण कर रहे थे वहीं वे आगामी चर्चा के लिए आख्यानों से भी परिचित हो रहे थे। प्रत्येक विद्यार्थी की समीक्षा को उनके द्वारा संबधित साहित्य के अध्ययन से उपजे निर्माण-विनिर्माण-अर्थग्रहण को व्यक्त कर रही थी। अब वे सभी अनेकों आख्यानों से लैस थे जिनका प्रयोग कक्षा चर्चा में किया जाने लगा।

इसी प्रकार अगले सेमेस्टर एक नए समुच्चय का चुनाव किया गया। इस बार पुस्तकों का चुनाव करने में म.गा.अ.हि.विवि. के आवासीय लेखकों श्री मदन सोनी और श्री अरूणेश नीरन जी की मदद ली गयी। आप लोगों के सुझावानुसार सूनी घाटी का सूरज़ जूठन, आपका बंटी, कागजी है पैरहन, मित्रो मरजानी, आपका बंटी, कुरू कुरू स्वाहा, नौकर की कमीज, राग दरबारी, संस्कार जैसी पुस्तकों का चुनाव किया गया। पहले की भाँति विद्यार्थियों को पुस्तक पढ़ने और उस पर चर्चा आयोजित करने को कहा गया। इस बार हम उन साहित्यिक कृतियों से जुड़ रहे थे जो प्रत्यक्षतः शिक्षा के मुद्दो पर नहीं थी लेकिन हर कृति किसी न किसी रूप में व्यक्ति, शिक्षा और समाज के संबंधों को संबोधित कर रही थी। उदाहरण के लिए 'कागजी है पैरहन' में इस्मत चुगताई की आत्मकथा के बहाने 20 वीं शताब्दी के प्रथमरार्द्ध की शिक्षा व्यवस्था का आख्यान था, एक महिला की शिक्षा और अस्मिता से जुड़े मुद्दे थे। 'राग दरबारी' में आजादी के बाद के भारत में शिक्षा संस्थानों की संस्थागत गतिकी और ग्रामीण भारत की सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों का विवरण है। इसी प्रकार 'संस्कार' एक नए फलक को सामने रखकर सामाजिक बदलाव के प्रश्न से दो चार करवाता है। 'सूनी घाटी का सूरज' शिक्षक की पेशेवर स्थितियों को सामने रखता है। इस बार के प्रयास में विद्यार्थियों ने स्वयं पुस्तके बतानी प्रारम्भ की और यह भी मांग रखी कि इस गतिविधि की आवृत्ति अधिक हो। अन्य साथियों को भी इस प्रयास से परिचित कराने के संभव तरीकों पर भी चर्चा की। ये प्रवृत्तियां इस प्रयास की प्रासंगिकता और सफलता के संकेतक हैं।

यद्यपि यह लघु कक्षा में एकाकी शिक्षक का प्रयास है इससे बढ़े पैमाने के लिए कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते हैं। लेकिन यह प्रयास हमें एक रास्ता सुझाता है जहाँ साहित्य, शैक्षिक विमर्शों को समझने के लिए न केवल आख्यान के रूप में प्रयोग किया जा सकता है बल्कि वह पाठक को कथ्य में व्यक्त संवेदना, संघर्ष और स्व के विकास के संघर्ष का सहभागी बनकर उसकी तद्भूति करने का भी अवसर देता है। यह प्रयास देखने में सतही रूप से जितना सरल जान पड़ता है, उतना ही जटिल है। यहाँ कथानक को पढ़कर घटनाओं को क्रम में नहीं लगाना है बल्कि घटनाओं में अन्तर्निहित वृहद् और सूक्ष्म परिस्थितियों का विश्लेषण करना है। यहाँ निर्णय मात्र नहीं देना है कि फलां पात्र के साथ न्याय हुआ या अन्याय। यहाँ उस प्रक्रिया को उभारना है जो वैयक्तिक चेतना का हिस्सा बन रही है। यहाँ केवल शिक्षणशास्त्रीय सुझाव नहीं देने है बल्कि उन फलकों को तराशना है जो शिक्षा का कार्यक्षेत्र बनेगें। शिक्षा के अर्थ को सीखने-सिखाने और कक्षागत परिस्थितियों की समझ के सीमित दायरे से बाहर निकालकर उसे आम आदमी के जीवन को गढ़ने के माध्यम के रूप में देखना होगा। इस दृष्टि से साहित्य के माध्यम से शैक्षिक सरोकारों का विश्लेषण एक अन्तर्दृष्टि देगा जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा तक पहुंच की चुनौती, शैक्षिक संस्थानों की संस्थागत गतिकी, अस्मिता विकास के पहलुओं और वैयक्तिक और सामूहिक चेतना के विकास को समझा जा सकेगा। इस पूरे उद्यम में यह भी ध्यान रखना होगा कि विचारों को थोपने से कैसे बचा जाए? किस प्रकार से अध्ययन उद्देश्य से संबंधित साहित्य का चुनाव हो? किस प्रकार से इन साहित्यों को कक्षा चर्चा का हिस्सा बनाया जाए?

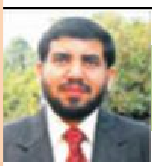

सम्राट अशोक और कलिंग का युद्ध: बौद्ध धम्म का अंगीकार

सुरजीत कुमार सिंह

जब हम सम्राट अशोक के जीवन के बारे में पढ़ते हैं तो पाते हैं कि वह चण्डअशोक नाम से जाने जाते थे और कहा जाता है कि उन्होंने अपने निन्यानवे भाइयों की हत्या कर राजगद्दी को हथिया था। प्रो. राधाकुमुद मुखर्जी लिखते हैं कि "दक्षिण की कथाओं का यह कथन की अशोक ने राज्य के लिए अपने 99 भाइयों की हत्या की थी, जिसके लिए उसे चण्डअशोक कहा गया है, अतिरंजना है. तारानाथ के अनुसार उसने अपने सिर्फ 06 भाइयों का वध किया था."[1] सच तो यह है कि "इन कहानियों में यही दिखलाने का उत्साह है कि बुद्ध की शरण में आने से पूर्व अशोक कितना क्रूर था और उसके बाद उसमें कितना परिवर्तन आ गया."[2]

अशोक के राज्य अभिषेक की सच्चाई चाहे जो भी हो, लेकिन हम अशोक के शहाबाजगढी के तेरहवें शिलालेख में पाते हैं कि सिंहासन पर बैठने के आठ वर्ष बाद अर्थात् सन 262 ईसा पूर्व[3] वह अपने राज्य का विस्तार करने के लिए कलिंग पर आक्रमण कर देते हैं, जिसमें कई लाख प्राणी मारे जाते हैं, असंख्य अपंग हो जाते हैं और असंख्य को बन्दीबना लिया जाता है। यह देखकर अशोक का मन वेदना और संताप से भर उठता है और अशोक को कलिंग विजय पर पश्चाताप होने लगता है. कालिंग का युद्ध ही चण्ड अशोक को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी अशोक में बदल देता है।

शहाबाजगढी के तेरहवॉ शिलालेख में अशोक खुद लिखवाता है कि "अब कलिंग के विजित होने पर देवताओं के प्रिय की रूचि धर्मपालन

1 राधाकुमुद मुखर्जी, *अशोक*, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, २००४, पृ.४.

2 वही, पृ.५.

3 वही, पृ.१५.

धर्मकर्म और धर्मोपदेश में तीव्र हो गई है। कलिंग विजित कर देवताओं के प्रिय को खेद है। क्योंकि यह विजय कोई विजय नहीं है। इसमें वध, मरण और निष्कासन होता है। युद्ध में आघात, वध और प्रियजनों का निष्कासन होता है।"[4]

यह अभिलेख अशोक के ऊपर कलिंग युद्ध के प्रभाव की कहानी स्वयं व्यक्त करता है, जिसमें अशोक की मनोदशा का पीड़ादायक चित्रण है. पीड़ित प्राणियों की मनोदशा को देखकर वह मानसिक तौर से अशांत हो उठता है। इसके उपरांत उसके लिए बौद्ध धर्म ही मानसिक शांति और प्राणी कल्याण की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है और वह अपना सम्पूर्ण जीवन समस्त प्राणी कल्याण के लिए समर्पित कर देता है। अगर अशोक को कलिंग युद्ध से सबक ना मिला होता तो वह एक सामान्य राजा की तरह ही राज-काज चलाता. लेकिन यह कलिंग ही वह स्थान है जो अशोक को एक कल्याणकारी राजा के रूप में स्थापित कर देता है. जो जनता को अपनी संतान की तरह ही मानता है. उसके शिलालेख स्वयं यह वृतांत बताने लगते हैं.

गिरनार के प्रथम चट्टान शिलालेख में अशोक लिखवाता है कि "यह धम्म लिपि देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखवाई गयी है, जिसमें कोई भी जीव बलि के लिए नहीं मारा जाएगा. न कोई समाज द्वारा ही किया जायगा। बहुतसा दोष समाज में देवनांप्रिय प्रियदर्शी राजा देखता है।- फिर भी निश्चित प्रकार के समाज को ही देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा उचित मानता है। पहले भोजनालय में देवानांप्रिय प्रियदर्शी के प्रत्येक दिन सहस्त्रों जानवर न के लिए मारे जाते थेज्जप्राणी) सूप व्य), पर आज से जब यह धर्मलिपि लिखवाई गई तब से तीन ही प्राणी-दो मोर और एक मृग व्यंज्जन के लिए मारे जाते हैं, इनमें भी मृग का मारना निश्चित नहीं है। बाद में ये भी तीन प्राणी (मृग का अर्थ यहाँ किसी भी चौपाए पशु से लिया जा सकता है। यह बाध्यता नहीं है कि केवल हिरण के लिए इसका प्रयोग किया गया हो। उसी प्रकार मयूर से अभिप्राय पक्षी समुदाय से है, केवल पक्षी विशेष मयूर के लिए ही नहीं है) नहीं मारे जायेंगे।"[5]

गिरनार के दूसरे चट्टान शिलालेख में हम आगे देखते हैं कि अशोक अपना राज्य विस्तार करने के बाद किस तरह के सामाजिक व कल्याणकारी कार्यों में सलंग्न हैं "देवाताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने सर्वत्र विजय करके-चोल, पाण्डय, सत्यपुत्र, ताम्रपर्णी, अन्तियोक नामक यवन राजा तथा उस अन्तियोक के निकट जो राजा हैं, सर्वत्र देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो चिकित्साओं को स्थापित किया. मनुष्य-चिकित्सा तथा पशु-चिकित्सा और वे औषधियाँ जो मनुष्योपयोगी तथा पशुपयोगी हैं जहाँ-जहाँ नहीं हैं सर्वत्र लाई गई और लगाई गई । जहाँ-जहाँ मूल तथा फल नहीं हैं, सर्वत्र लाए गए तथा लगाए गए। मार्गो में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए कूएँ खुदवाए गए तथा वृक्ष लगवाए गए"[6]

शहाबाजगढी के अपने सबसे महत्वपूर्ण तेरहवॉ शिलालेख में अशोक खुद लिखवाता है कि "कलिंग के विजित होने पर देवताओं के प्रिय की रूचि धर्मपालन, धर्म की शुद्धि(धर्मकर्म) धर्मानुराग (और धर्मानुशष्टि) धर्मोपदेश में तीव्र हो गई। कलिंग विजित कर देवताओं के प्रिय को खेद है। क्योंकि यह विजय कोई विजय नहीं है। इसमें वध, मरण और निष्कासन होता है। वह देवताओं के प्रिय के द्वारा अत्यन्त वेदनीय और गंभीरता का अनुभव किया गया।

इससे भी अधिक गंभीर देवानां प्रिय के लिए यह है क्योंकि वहाँ ब्राह्मण, श्रमण या अन्य सम्प्रदाय या गृहस्थ रहते हैं, जिनमें अग्रजों की सेवा, माता पिता की सेवा, गुरु सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, ज्ञातिजनों तथा दास-भक्तों के प्रति सद्व्यवहार और दढ़ भक्ति पाई जाती है। युद्ध में वहाँ आघात, वध और प्रियजनों का निष्कासन होता है। यही सब मनुष्यों की दशा होती है। फिर भी जो सुव्यवस्थित स्नेह वाले होते हैं, उनके मित्र, परिचित और ज्ञातिजन संकट को प्राप्त होते हैं. उनसे उनको आघात होता है। यही सब मनुष्यों की दशा होती है। यह देवताओं के प्रिय के मत में गंभीर है। ऐसा एक भी देश नहीं है, जिसमें रहने वालों का किसी सम्प्रदाय में विश्वास न हो।

इसलिए जितने लोग कलिंग में मारे गये, मरे व बन्दी बनाकर ले जाये गये उनका सौवा या हजारवां भाग भी आज देवताओं के प्रिय के मत में घृणित है। देवताओं के प्रिय के विचार में यदि कोई अपकार करे तो वह क्षम्य है वहाँ तक क्षमा करना संभव है और जो आटविक प्रदेश देवताओं के प्रिय द्वारा विजित उसके राज्य में हैं उन्हें वह अनुनय द्वारा शांत करता है, परिवर्तित करता है तथा अपनी कृपा के अतिरिक्त उन्हें दण्ड देने की अपनी शक्ति को बताता है।

देवताओं का प्रिय उनसे कहता है कि वे अपने पूर्व कर्मो के लिए लज्जित हों नहीं, तो नष्टकर दिए जाएँगे। वह सभी प्राणियों के अक्षय, संयम, सदाचरण और प्रसन्नता की इच्छा करता है। देवताओं के प्रिय के अनुसार धर्मविजय ही प्रमुख विजय है। यह विजय बार्बार देवताओं के प्रिय द्वारा यहाँ और सभी सीमान्त राज्यों में आठ सौ योजन दूर स्थित अन्तियोक नामक यवन राजा और उस अन्तियोक के अतिरिक्त चार राजा-तुलमय (टालमय), अन्तिकेन (अण्टीगोनस गोनैटस), मक (मेगास थियास), अलिकसुन्दर (इपिरस या कोरिंथ का एलेक्जेण्डर) और दक्षिण में चोल, पाण्डय, ताम्रपर्णी तक की गई है। इसी प्रकार राज्य, प्रदेशों, कम्बोजों, नाभपंक्यिों, भोजों, पिटैनिकों आंध्रों तथा पुलिंदों सर्वत्र देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का पालन होता है। जिन स्थानों में देवताओं के दूत नहीं पहुँचते वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय के धर्म का व्यवहार विधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते हैं और करते रहेंगे। इससे जो विजय प्राप्त होती है वह सर्वत्र पुन: प्रीति देने वाला होता है। धर्म विजय से प्राप्त प्रीति गाढी होती।फिर यह प्राप्ति छोटी है क्योंकि देवताओं का प्रिय परमार्थ को ही महाफलमानता है।

इस निमित्त यह धर्मलिपि अंकित कराई गई कि "मेरे पुत्र, पौत्र जो इसको सुने वे नया विजय न करें। अगर उन्हें शास्त्र विजय करना ही पड़े तो शान्ति और लघुदण्डता का अनुसरण कर उसमें आनन्द लें। वे धर्म विजय को ही विजय माने, वही इहलौकिक और पारलौकिक सुख का कारण है। उद्यम में ही उन्हें आनन्द हो क्योंकि वह इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए कल्याणकारी होता है।"[7]

इस तरह हम देखते हैं कि सम्राट अशोक कि मानव कल्याणकारी दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी, जो आज भी हमको नवीन दिखाई देती है. यह ही नहीं आज भारत की सरकार हो या दुनिया भर के अन्य देशों की सरकारें हों या फिर विश्व वन्य प्राणी संगठन (W.W.F.) हो जिनकी चिन्ता आज

4 डॉ. शिवस्वरूप सहाय, *भारतीय पुरालेखों का अध्ययन*, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, २००८, पृ.१०८.
5 वही, पृ.९१.
6 वही, पृ.९२.
7 वही, पृ.१०८-१०९.

संकटग्रस्त जीवों के प्रति है. जो इतने वर्षों के बाद अब जाकर नियमों और कानूनों में बंधकर उनकी सुरक्षा संभव हो पायी है। सम्राट अशोक की चिंता इन संकटग्रस्त प्राणियों के प्रति दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी, यह हम दिल्ली टोपरा के पाँचवें स्तम्भ लेख में पाते हैं। जिसमें अशोक लिखवाते हैं कि "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है कि छब्बीस वर्षों से अभिषिक्त होने पर इन जीवधारियों को मैंने अवध्य घोषित किया है, वे हैं- शुक, सारिका लाल पक्षी, चकवा, हंस, नन्दीमुख (मैना का एक प्रकार), गेलाट, गीदड़, रानी चींटी, कछुई, अस्थि रहित (बिना कांटे की) मछली, वेद वेयक, गंगा-कुक्कुट, संकुज मत्स्य, कछुआ, साही, नपुंसक शश, वारहसिंगा, सॉंड गोधा, मग, सफेद कबूतर, ग्राम कपोत और सभी प्रकार के चौपाए जो न उपयोग में आते हैं न खाए जाते हैं। गर्भिणी अथवा दूध पिलाती हुई बकरी, भेडे, शकूरी अवध्य बताई गई है इनके बच्चे भी जो एक महीने के होते थे वे भी। कुक्कुट की बधिया नहीं करनी चाहिए। सजीव भूसी नहीं जलानी चाहिए। व्यर्थ के लिए या हिंसा के लिए जंगल नहीं जलाना चाहिए।

जीव से जीव का पोषण नहीं करना चाहिए। तीनों चौसामों में तिष्य पूर्णमासी को तीन दिन-चतुर्दशी, पूर्णिमा और प्रतिपदा, निश्चितरूप से उपवास के दिन मछलियॉं नहीं मारनी चाहिए और न बेचनी चाहिए। इन दिनों नागवनी, मछलियों के तालाब में जो भी दूसरे जीव हों उन्हें नहीं मारना चाहिए। प्रत्येक पक्ष की पंचमी, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, तिष्य, पुनर्वसु, तीन चातुर्मासों के शुक्ल-पक्ष में गौ को दागना नहीं चाहिए। बकरा, भेड़, सूअर अथवा और जो पशु दागे जाते हैं उनको भी नहीं दागना चाहिए। तिष्य, पुनर्वसु, प्रत्येक चतुर्मास की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चतुर्मास के शुक्ल पक्ष में अश्व और गौ को दागना नहीं चाहिए। छब्बीस वर्ष अभिषित होने पर मैंने इस बीच पच्चीस बार बन्धन-मोक्ष (बन्दियों की मुक्ति) किया है। इस अभिलेख में हम एक नवीन बात पाते हैं कि आज दुनिया भर की सरकारें निसक्त, बीमार और वृद्ध कैदियों को विशेष अवसरों पर क्षमा दान देते हैं, उनको रिहा करते हैं. लेकिन अशोक ने इस लेख के लिखे जाने तक 25 बार कैदियों को कारावास से मुक्त किया था।

इस तरह हम देखते हैं कि सम्राट अशोक के ऊपर यह कलिंग युद्ध का ही प्रभाव जिसमें वह बौद्ध धर्म अपनाते हैं और वह इस प्रकार की योजनायें और घोषणाएँ करते हैं कि जो हमको आज भी आश्चर्यचकित कर देती हैं कि वह कितना दूरदर्शी सम्राट था. जो चण्ड अशोक से देवानां प्रियदर्शी हो अपना सम्पूर्ण जीवन समस्त प्राणी कल्याण के लिए समर्पित कर देता है।

गांधी, गांधी विचार और हिंदी-मराठी नाटक

सतीश पावडे

महात्मा गांधी ने हिंदी-मराठी साहित्य की अनेक विधाओं को प्रभावित किया है। कहानी, कविता, उपन्यास, व्यंग आदि के साथ नाटक और रंगमंच भी गांधी विचार से अछूता नही रहा। गांधी अलग अलग प्रकार से हिंदी-मराठी नाटक का हिस्सा बनते रहे ।उनका व्यक्तित्व और कृतित्व इतना असामान्य, विरला और विलक्षण रहा की सृजनशील, विचारशील लेखक गांधी को अपने नाटक का विषय टाल नही सके।

हिंदी रंगमंच में गांधी चरित्र पर आधारित नाटक लिखने का प्रारंभ सेठ गोविंद दास ने किया। 'मोहन करमचंद गांधी, 'कर्तव्य', 'सेवापथ', प्रकाश पथ' 'हर्ष' आदि नाटक लिखकर गांधी चरित्र के साथ गांधी विचारों को रंगमंच तक लाने का कार्य सेठ गोविंद दास ने किया। उनके बाद हरि कृष्ण प्रेमी ने 'आहुती' 'स्वनभंग' 'मित्र', और 'रक्षा बंधन', आदि नाटक लिखकर गांधी विचारों का प्रचार-प्रसार किया। मुन्शी प्रेमचंद ने भी 'प्रेम की वेदी' नाटक लिखकर गांधी विचारों को अभिव्यक्त किया। विष्णु प्रभाकर ने 'हमारा स्वतंत्र संग्राम' तथा भगवान दास वर्मा ने 'बुझता दिपक' लिखकर हिंदी नाटकों में गांधीवादी नाटकों की परंपरा को समृद्ध किया । प्रसादोत्तर युग में 'गांधी' हिंदी नाटककारों के आकर्षण का विषय बने रहे।

स्वतंत्र भारत में इसी परंपरा को लक्ष्मीनारायण मिश्र (सन्यासी), प्रभाकर माचवे (गांधी की राह पर), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (बकरी), अर्जुन देव सारंग (हिंदी स्वराज्य) , गिरीराज किशोर (गांधी को फासी दो), असगर वसाहत (गांधी@ गांधी.कॉम), ललीतकुमार सहगल (हत्या एक आकार की), राजेश कुमार (गांधी ने कहा था ।), सुशील कुमार (बापु की हत्या हजारवी बार), राजेंद्र त्यागी (बापु कैद में), नरेंद्र मोहन (मिस्टर जिन्ना) आदी लेखकों ने आगे बढाया। सेठ गोविंद दास स्वयं गांधीवादी विचारों से प्रभावित थे। दसलिए उनके नाटक गांधीवादी आदर्शो को मानदंड के रूप में अभिव्यक्त करते थे। किंतु उनके पश्चात इन्हीं आदर्शों को नये नाटककार अपने ढंग से व्याख्यायित करते देखे जा सकते हैं। गांधी को बदलते चश्मों के साथ अलग-अलग रूपों में हिंदी नाटकों में अभिव्यक्त किया गया।

मराठी नाटकों में भी गांधी शुरूआती दौर में 'आदर्श' के रूप में ही रखे गये। चरित्र प्रधान नाटक के बजाएं गांधी विचार को नाटक के विषय बनाये गये। इसीलिए मराठी नाटकों में गाधी विभिन्न प्रतीकों-प्रतिमाओं में व्यक्त किए गये। वरेरकर, रांगणेकर, पु.ल. देशपांडे जैसे नाटककारों के नाटकों में गांधीवादी चरित्र दिखाई देते है। भविष्यमें मात्र नये नाटककारों ने 'गांधी अपनी दृष्टि के 'प्रिज्म'की तरह अभिव्यक्त किया। मराठी में भी गांधी नाटकों की परंपरा काफी समृद्ध रही हैजिनमें प्रेमानंद गज्वी (गांधी-आंबेडकर, हे राम अजित दलवी (गांधी विरुद्ध गांधी), महेंद्र सुके (कुणी विकला गांधी) पु.ल. देशपांडे (तुझ आहे तुजपाशी), शफाअत खान (शोभा यात्रा), प्रदीप दळवी (मी नाथुराम

गोडसे बालतोय) धनंजय मांडवकर (मी कोण गांधी की गोडसे) वसंत गुर्जर (गांधी मला भेटला) आदी नाटकों का प्रमुख रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

भाषागत भिन्नता छोड़ दें, तो हिंदी और मराठी दोनों ही नाटककारों के प्रश्न 'गांधी' के परिप्रेक्ष्य में काफी मिलते जुलते है। आम तौर पर आधुनिक पीढी के नाटककार गांधी को उसकी महानता के साथ उन्हें कटघरे में भी खड़े करते दिखाई देते है। गांधी,गांधी विचारों की प्रासंगिकता का विवेचन, गांधी को विभाजन के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करना, गांधी को आंबेडकर और दलित अस्मिता के मायनों में जांचना, साथ ही गांधी को 'ब्रैन्ड' बनाकर उसका बाजारीकरण करना, गोडसे-गांधी के ' प्रकरण' को हाशिए पर रखना, आदि दृष्टिकोण हिंदी-मराठी नाटकों में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते है। कई नाटक गांधी दर्शन की पुर्नव्याख्या भी करते है। तात्पर्य यह कि नाटक आलोचनात्मक है, समीक्षात्मक है, प्रतिक्रियात्मक है किंतु सर्जनशीलता के साथ हिंदी मराठी के अलावा भारतीय डायस्पोरा में भी 'मुन्नाभाई मीट्स गांधी', 'गांधी माय फादर', 'गांधी बिफोर गांधी आदि नाटक हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती में खेले गये हैं, इनका उल्लेख करना भी अनिवार्य है।।

पिछले दशक में असगर वजाहत का 'गोडसे @ गांधी डॉट कॉम' तथा प्रेमानंद गज्वी का 'गांधी-अंबेडकर' नाटक काफी चर्चा का विषय रहे। इन दोनों नाटकों में गांधी चरित्र और गांधी विचार दोनों कोपरखा गया है। असगर वजाहत कहते है '' गांधी की अलग की अलग ढंग से व्याख्या करना इसलिए संभव है की, गांधी अपनी महानता के बावजूद कुछ बहुत छोटे और टुच्चे विश्वासों, विचारों से अपने आप को मुक्त न करा सके थे। उनके विचार और व्यक्तित्व में अपार अंतर्विरोध पडे है। वही प्रेमानंद गज्वी कहते है "महात्मा गांधी महान थे ही किंतु उसका लाभ दलित जनता को नही मिला। न डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की लढाई को वे समझ सके, ना डॉ. बाबासाहब को''। असगत वजाहत और प्रेमानंद गज्वी नाटककार केवल नाटककार ही नहीं बल्कि सामाजिक आंदोलन से जुडे कार्यकर्ता भी हैं। दलित समाज में गांधी की प्रतिमा को ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उन्होंने विश्लेषित किया है। वहीं गोडसे का परिप्रेक्ष्य रखकर असगर वजाहत ने अपने नाटक में गांधी के अंतर्विरोधों और उसमें छोटे होते गांधी और गांधीवाद को रखा है। ये दोनों नाटक गांधी, गांधीवाद पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

यदि आज गांधी होते तो वे गांधी विचारों की हत्याकैसे देखते? यह एक प्रश्न कई नाटककारों के जेहन में आता है। गांधी, गांधीवादकी पराजय भी कई नाटककारों के गंभीर चिंतन का विषय बना है। गांधी के नाम पर राजनीति का विषय भी कई नाटककारों ने तीखे तेवर में रखा है। गांधी की उपेक्षा, अवहेलना भी कई नाटककारों की संवेदनशिलता को चुनौती देती है। अंहिसा, शांति ग्रामस्वराज, स्वाधीनता, संन्यास, सत्य के प्रयोग, गांधीवादी, राजनीत, गांधीवादी अर्थशास्त्र, गांधी का सत्यवाद हिंदी-मराठी नाटकों में प्रतिबिबिंत हुआ है। 'बकरी' जैसे नाटक में लोकनाट्य शैली में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने गांधी-गांधीविचारों के पराजय को पैने-तीखे व्यंग साथ रखा तो 'गांधी को फासी दो' नाटक में गिरीराज किशोर 'हिंदस्वराज' की परिकल्पना के पराजय को व्याखायित करते हैं। 'बापू कैद में' इस नाटक में राजेंद्र त्यागी बापू के सिद्धातों की हत्या पर संवेदनशील बन जाते है। कहीं महेंद्र सुके 'कुणी विकला गांधी?' में गांधी को कैसे सरे आम बेचा जा रहा है। इस पर सवाल खड़े करते है। प्रेमानंद गज्वीने भी अपने'हे राम' नाटक में गांधी की उन्हीके तीन बंदरों द्वारा अपने स्वार्थ हेतु हत्याका दृश्य बड़े मार्मिक तरीके से व्यक्त किया है।

अभी हाल ही में मराठी के प्रसिद्ध लेखक शफाअत खान द्वारा ' गांधी आडवा येतो' नाटक लिखा गया, जो गांधी की आज की प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है। 'गुंडा एलिमेंट को लेकर उसके पारिवारिक राजनीति के परिप्रेक्ष्य को नये ढंग से रखा है। 'गुंडाइज्म' की एक नई परिभाषा यह नाटक रखता है। उदय प्रकाश का नाटक 'मोहनदास' अस्तित्व खो जाना, मिट जाना, गुम हो जाना आदि के संदर्भ में गांधी और गांधीवादको रखता है। आज गांधी अपने मूल अस्तित्व को खो चुके हैं। आज की व्यवस्था ने, राजनीति ने असली गांधी और गांधीवाद को लील लिया है। यह एक अंतर्मन को कचोटने वाली बिंबात्मक नाटकीय प्रतिक्रिया है, जो गांधी को सीधे, स्पष्ट रूप से उद्देशित नही करती पर गांधी को आरोपित न करते हुये भी गांधी के अपरोक्ष पराजय की बात जरूर रखती है।

गोडसे - गांधी चरित्र की बहुत महत्वपूर्ण कडी है, जो नाटक के दृष्टिकोण से सर्वाधिक प्रासंगिक है। इस समय धर्म परिवर्तन और गोडसे पूजाके 'प्रश्न' सर्वाधित चर्चा का विषय बन गये है। इस परिप्रेक्ष्य में राजेश कुमार का नाटक' गांधी ने कहा था' एक प्रासंगिक और समकालीन प्रयास है। अपने नाटक के परिप्रेक्ष्य में राजेश कुमार कहते है 'गांधी-गोडसे की लडाई तो शाश्वत है। जहां सच है वहां गांधी और जहा आंतक है वहा गोडसे। हिंसा अगर गोडसे है तो हिंसा का जवाब है गांधी। सांप्रदायिकता, कट्टरता,धर्मांधता का जवाब है गांधी। गांधी की यह सेक्युलर व्याख्या सर्वात महत्वपूर्ण है जिस पर नाटककारों ने कम लिखा है। किंतु नरेंद्र मोहन का 'मिस्टर जिन्ना' नाटक गांधी के सेक्युलर इमेज अधिक स्पष्ट रूप से विश्लेषित करता हैं। मन से गांधी हिंदू थे पर कट्टर नहीं। वे हिंदू होने का तात्पर्य आचार पद्धति से मानते थे, धर्मांधता से नही। 'मिस्टर जिन्ना' में सेक्युलर गांधी को बडी ताकत के साथ नरेंद्र मोहन ने खडा किया है। 2014 में युवा नाटककार धनंजय मांडवकर ने 'गांधी-गोडसे के परिप्रेक्ष्य में गांधी की अवहेलना पर अपनी व्यथा व्यक्त की है। गोडसे के दैवतीकरण पर और युवा हिदुत्ववादियों के गोडसे वादी तेवर पर प्रहार किया है। यह एक आशावादी चित्र है।

❀❀

मौसम बदल गया

डी.एन. प्रसाद

जलने लगे पहाड़
मौसम बदल गया
ऋतु ने किया संहार
मौसम बदल गया
निर्मल नहीं है प्यार
मौसम बदल गया
नैसर्गिक नहीं संसार
मौसम बदल गया
नभ भी हुआ उदास
मौसम बदल गया
हुई बसुधा बेजार
मौसम बदल गया
बरसाये आग आकाश
मौसम बदल गया
सपना हुआ ऋतु-हार
मौसम बदल गया
सह-जीवन हुआ है भार
मौसम बदल गया
सहोदर मिला न प्यार
मौसम बदल गया
प्रकृति से लोभ-वरण व्यापार
मौसम बदल गया
समन्वय हुआ दुस्वार
मौसम बदल गया
रिश्ते हुए व्यापार
मौसम बदल गया
जीवन हुआ निःसार
मौसम बदल गया

विनय

मुबारक मुल्ला

गुरु कुछ ऐसा ज्ञान दो
जिसमें सुख-शांति समाए
मैं भी उन्नति कर पाऊँ
औरों को हर्षाए
बढ़ सकूँ आगे निडर निरंतर
खुदगर्जों की बस्ती से
पा सकूँ इमान का साहिल
इंसाफ की कश्ती से
आपके बताए हुए पथ पर चलते हैं, चलेंगे भी
अब तक कई मिल गए भले-बुरे,
शायद और कई मिलेंगे भी
नेकी तो हमारा संबल है....
बुराइयों को हमारी सँवारने का फरमान दो
गुरु कुछ ऐसा ज्ञान दो
भूले नहीं हम आज भी आपका दिया हुआ
शील, क्षमा और नम्रता का सबक
आज भी हम नम्र होकर सर झुकाना चाहते हैं..
पर डरते हैं कहीं यह सर किसी ग़ैर के सामने न झुक जाए
बिखर जाए कभी भ्रष्टाचार के
बवंडर में आशियाना मेरा
तब जुट जाऊँ अविरत पुनर्निर्माण में
ध्येय-धैर्य का ऐसा वरदान दो
गुरु कुछ ऐसा ज्ञान दो
आपकी दी गई शिक्षा से हम जरुर बड़े बनेंगे
जन्मभूमि और जन्मदाताओं के निगाहबान बनेंगे
वतन की रखवाली में कटाना पड़े हमें अपना सर
तब हिम्मत से आगे बढ़ने की आन दो
गुरु कुछ ऐसा ज्ञान दो

आदित्य सिंह (कक्षा 5, संदिपनी स्कूल, हजारी पहाड़, नागपुर) से साभार

दया

अनुराग कुमार पाण्डेय

एक शाम मैं यूं ही जा रहा था,
सुनसान सड़क पर अंधेरा छा रहा था,
चाँद बादलों के झरोखे से हल्की रोशनी बिखेरे जा रहा था,
मेरे भी दिल मेंइस सुनहरी शाम के लिए खयाल आ रहा था,
के जिंदगी कितनी खूबसूरत है.....
हर कोई इसे बेखबर मदमस्त जिये जा रहा था।

तभी अचानक मेरी नजर एक धुंधली सी आकृति पर पड़ी,
शायद वहां अंधेरे में एक महिला थी खड़ी,
उसकी आखों में थे आँसू और नजरें थी जमीन पर गड़ी,
मानो वह किसी अनचाहे से फैसले पर अडिग हो अड़ी,
के उसने कुछ निश्चित कर लिया हो......
उसके चेहरे पर शिकन के साथ आंसुओं की थी लड़ी।

मैं अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए उसके पास गया,
मैंने पूछा कौन हो तुम और तुम्हें क्या हो गया?
उसने बड़े मधुर शब्दों में कहा मेरा नाम है "दया",
अब न मैं किसी के दिल में हूँ और न है किसी को इसकी हया,
के सभी अपने मतलब मे खोये हुये हैं......
ये कैसा है कुदरत का दस्तूर, कैसी है माया।

आज हर किसी को है अपने फायदे से मतलब,
एक होड़ सी मची है और है आगे निकलने की तलब,
इस दौड़ में हर दूसरे को मारने का कैसा तरीका है अजब,
न खुदा का खौफ है और न ही बड़ों का अदब,
के बेचारी बिल्लियाँ तो बेरोजगार बैठी हैं......
इस दौर में आदमी को, आदमी के रास्तों को काटने का है रिवाज गज़ब।

एक समय था जब सभी के दामन में खुशियों का भरमार रहा है
तब मानव का अन्य जीवों से प्यार अपार रहा है,
पर कहाँ खुशियों का काफिला सदा निसार रहा है,
कहाँ शरद के मौसम का पतझड़ से इजहार रहा है,
के मानव तो अब रहा नहीं......
आज तो गली-गली दानव ही सवार रहा है।

अब तो मानव अपने शौक के लिए बेजुबान जानवरों को मारता है
बेखबर जानवरों के खून से खुद को संवारता है
हर दूसरा जानवर मानव के सामने जीवन की भीख पुकारता है
बचने को, जीने को दया की चीख चित्कारता है,
के इंसान तो समय के साथ बदल गया......
इस बर्बर संहार को "प्रकृति का नियम" सकारता है।

इंसान तो प्रेम, ममता, क्षमा को अब नहीं जानता,
महिला को तो वह उपभोग की वस्तु है मानता,
कैसा प्रेम, कौन सी ममता, अब रही नहीं कोई समानता,
है बस दरिंदगी और दुर्जनता, गई कहाँ सज्जनता?
के वह अब तो समझदार हो गया है......
और सयाना इतना, कि दूसरे इंसान को नहीं पहचानता।

आलम तो कुछ यूं है कि नहीं बची अब इनमें इंसानियत,
बरसती है तो सिर्फ निर्दयता और हैवानियत,
नहीं रहा इनमें खुदा का खौफ और न ही शिद्दत और इबादत,
इनसे बेहतर तो कुत्ते हैं, जो अभी भी निभाते हैं कुत्तानीयत,
के इंसान तो अब विकसित हो गया है......
पर कुत्तों मे बाकी है आज भी वफादारी की फितरत।

इतना कह वह अँधेरों में कहीं खो गयी,
ना कहते हुये भी कितने अनछुए पहलुओं को भिगो गयी,
मेरे जेहन की खुशनुमा धुन्ध को आंसुओं के सैलाब से डुबो गयी,
बेसुध फसानों से पर्दे हटाकर आँखों से रुखसत हो गयी,
कि हम इंसान हैं या जानवर......
क्या सच में हमारी इंसानियत हमसे तन्हा हो गयी???

आदित्य सिंह (कक्षा 5, संदिपनी स्कूल, हजारी पहाड़, नागपुर) से साभार

प्राकृतिक त्रासदी: एक सच

मुन्ना लाल गुप्ता

तुम कहते हो
हमने फतह कर ली है
चाँद और तारों पर
सागर और किनारों
पर, एक त्रासदी प्रकृति की
बन गयी सारी
मानवता पर भार
बौनी हो गयीं
तुम्हारी सारी उपब्धियां
और अक्षम हो गया
तुम्हारा दंभी ज्ञान।
तुमने आधुनिकता / के नाम पर
परंपरा के संयम को
जरूर तोड़ा है
विज्ञान और विकास / के नाम पर
अंधाधुंध दोहन कर
प्राकृतिक संसाधन का
मैन से सुपरमैन
बनने की अंधी दौड़ में
संवेदनशीलता को भी छोड़ा है।
तुम से भले तो / वह जीव हैं
जो मूक होकर भी
हैं प्रकृति के करीब
जहाँ धराशायी हो जाती हैं
हमारी सारी लफ्फाजियाँ
और फिसड्डी हो जाता है
हमारा 'ग्लोबल संचार'
वहाँ प्रकृति अपना
रौद्ररूप दिखाने से पहले
जोड़ती है उस मूक से
अपनी संवेदना का तार
और करा देती है
उसके निर्मल हृदय में
त्रासदी का पूर्वाभास।

(यह कविता राजभाषा विभाग, दिल्ली द्वारा पिछले वर्ष पुरस्कृत की गयी थी)

नारी

वह नारी ही है जो
सृष्टि को बनाती है प्यारी
अर्पित कर अपने 'स्व' को
सजाती है बगिया सारी
जिसका करना चाहिए तुम्हें
तन-मन से सत्कार
कर कलंकित मानवता का
होता उनका बलात्कार।
मां, बहन, पत्नी ही नहीं
वह है तुम्हारे
सफर की साथी
आदमी से इंसा बनने की
जद्दोजहद की
है वह तुम्हारी पाती।
21 वीं सदी और
उपलब्धियां तुम्हारी असीम
पर सजा न सके हम
राधे-श्याम, सीता-राम की
मर्यादा ससीम ।

स्त्री शिक्षा की ज्योति

रजनीश कुमार अम्बेडकर

एक नहीं दो-दो परिवारों की जिम्मेदारी लेना,
जिसने हमको सिखलाया.......!
आधुनिक भारत में शिक्षा का महत्व बताने आए हैं,
स्त्री शिक्षा की ज्योति जलाई जिसने
उसको याद कराने आए हैं......!
शिक्षा से मान, सम्मान मिला हम सब का,
नहीं था अधिकार स्त्रियों को पढ़ने का.....!
स्त्री को शिक्षित करने का बेड़ा जिसने उठाया,
आज समाज प्रगति कर रहा है.....!
एक नहीं दो-दो परिवारों की जिम्मेदारी लेकर,
जिसने हमको आगे बढ़ना सिखलाया.......!
याद करो उस
'राष्ट्र माता सावित्रीबाई फूले' को
जिसने हमें स्त्री शिक्षा का महत्व बताया.....!

क्रम में नहीं है जो

अमरेंद्र कुमार शर्मा

1

मैं धरती का
सबसे पहला खानाबदोश
एक ऐसे अनाज के पौधे की खोज में भटकता हूँ
जो भर सके धरती पर समान रूप से सभी भूखों का पेट,
जिससे बची रह सकें प्रेम और कलाएँ ।

2

एक दुनिया
जो रोज बनती है मेरे साथसाथ-
मिट जाता है प्रेम
मेरे संवेदनाओं के ध्रुवांतों में ।

3

कुछ कम नहीं हैं गम
मेरे समय के कपड़े की सफेदी पर दाग
मेरी दुनिया की देह पर एक बड़ा सा घाव
खाली कनस्तरों के तिलचट्टे
रेंगते है रोज-
मेरे निखालिस सपनों के तलछट में ।

4

मेरी इक्षाओं के आग्नेय में तुम रोज जन्म लेती हो
और खिलती हुई पामीर के पठार से चली आती हो दण्डकारण्य
मेरे भीतर का लावा पसरता है तुम्हारी आत्मा के तहखाने में ।

5

मैं देश हूँ
स्त्री के सपनों का हन्ता देश
मुझमें समाई हैं , हजास्हजार हाथों वाली नदी
जिसमें डुबोता हूँ , तमाम रतजगों के सपने
निगलता हूँ – स्त्री का सम्पूर्ण वैभव
उजाड़ता हूँ उसके अस्मत का रेशा-रेशा
महानगरों से लेकर कस्बों तक
अपने पुरातन तिर्यक भंगिमाओं में ।

6

साहित्य के कोने से कोई एक धीमी हँसी
कला का कोई एक धीमा रुदन गढ़ता है ।
साहित्य के बड़े से किले के परकोटे से एक तेज अट्टहास
भयभीत कर जाता है ।
सावधान , वह साहित्य का ईश्वर है ------

7

हम हमेशा एक ही कविता लिखते रहते हैं–
बार-बार दुनिया के हर हिस्से में ।
एक ही चित्र बनाते हैं --- विभिन्न रंगों और कूचियों के भिन्न आकारों से
एक ही राग गूंजता है हमारे बीच– भिन्न ध्वनियों में ।

8

अपने समय को ज्यादा उदार,न्यायपूर्ण
और उत्तरदायी बनाने की चाह में
अपनी भाषा और अपने भूगोल के तानेबाने में
हमारी भाषा परिवर्तित हो रही है एक जींस, एक उत्पाद में
अपनी ही भाषा की गिरफ़्त में हूँ ।

माँ, पढ़ाई .... शांति .....

रेणु कुमारी

हम सब कितना पढ़ते हैं ..
पर कोई नहीं पढता माँ की तरह
वह चेहरे की त्वचा और पेशियों को पढ़ती है ..
और समझ जाती है कि
कितने भूखे और कितने खाए हैं हम ..
कितनी ख़ुशी और कितना ग़म है हममें
एक माँ जितना पढ़ती है उतना कोई नहीं पढता दुनिया में ….
दुनिया के सारे आविष्कार
तकनीक, विज्ञान
अक्षर - अक्षर ज्ञान
नवीनता लिए किसी सृजन की तरह ..
नवीन सृजन के लिए ....
लेकिन बहुत बुरा है
उनका किसी संहार और युद्ध के लिए इस्तेमाल ....
कोई नहीं चाहता अपने आविष्कार का ये हश्र ..
जैसे कोई माँ नहीं चाहती
अपने बच्चे की मौत किसी नस्ली .... जातियों के युद्ध में ..

इन आविष्कारों , तकनीक और विज्ञान के प्रयोग से पहले
क्या सुनिश्चित होना चाहिए कि
इन्हें इस्तेमाल करनेवाले हाथों और मनोमस्तिष्क में
थोड़ी संवेदना एक माँ की तरह , माँ की जैसी हो ..?
यदि न हो तो किसी टैबलेट या हॉर्मोन के रूप में इंजेक्ट कर दिया जाये उनकी देह में ?
ताकि वे किसी युद्ध या संहार को अंजाम न दें ....

माँ किसी संहार या युद्ध में ख़त्म होने के लिए किसी को जन्म नहीं देती ....

कश्मीरी औरत : काश, पूछो, कि मुद्दा क्या है

समीक्षा

अवंतिका शुक्ला

मैं भी मुंह में ज़बान रखता हूं
काश, पूछो कि मुद् आ क्या है

गालिब का यह शेर कश्मीरी महिलाओं पर बात करते समय एकदम मौजूं है.

कश्मीरी स्त्री के बारे में यदि हम हिंदी लेखन की बात करें तो 2008 में आयी संजना कौल का चर्चित कहानी संग्रह *काठ की मछलियां* (यूनीस्टार बुक्स प्राइवेट लिमिटेड चंडीगढ) पर बात करना अनिवार्य होगा. इस कहानी संग्रह का स्थान हिंदी कहानियों में बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसने कश्मीर से जुड़े कई महत्वपूर्ण और जवलंत मुद्दों को व्यवस्थित रूप से चर्चा में लाया है. वे मुद्दे जो अब तक दबे ढके स्वरों में बातचीत में आते रहे हैंपर खुलकर चर्चा में शामिल नहीं किये गये, इस संग्रह में प्रमुखता से शामिल किये गये हैं. एक खास दौर, खास घटना, खास समय कितने अलग-अलग रूपों में लोगों को प्रभावित करती है, इसका व्यापक दृश्य हमें इस संग्रह में दिखता है.इस संग्रह में कश्मीर की परिस्थितियों को केंद्र में रखकर वहां के व्यापक जन समुदाय की जीवन परिस्थितियों, रोजमर्रा के आर्थिक और भावनात्मक संघर्षों, तकलीफों का एक लेखा-जोखा एक स्त्री के नज़रिये से तैयार किया है. किसी भी देश के किसी हिस्से में आतंकवाद, सैन्यीकरण का प्रभाव वहां के लोगों, खासतौर पर महिलाओं के जीवन पर क्या पड़ता है, उस दृष्टिकोण से यह संग्रह हिंदी कथा साहित्य में महत्वपूर्ण है.

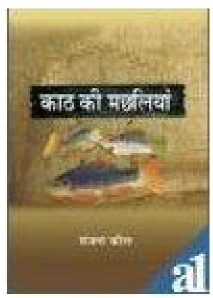

इस संग्रह की एक बड़ी सीमा कश्मीर मुद्दे को सिर्फ एक हिंदू कश्मीरी स्त्री के नज़रिये से देखना है. लेकिन एक स्त्री के दृष्टिकोण से जलते हुए कश्मीर और साथ ही जलते हुए उनके जीवन को जान पाना इस संग्रह की सार्थकता को बताता है. इस संग्रह की केंद्रीय भूमिका में एक कश्मीरी हिंदू स्त्री है, जो कश्मीर में बढते आतंकवाद और हिंदू विरोधी वातावरण में अपनी जन्मभूमि से धीरे-धीरे कटने की दुःखद प्रक्रिया से गुज़र रही है. एक अनिश्चित, असुरक्षित जीवन की ओर बढ रही है. तमाम तरह के अंतर्द्वंद्वों से वह जूझ रही है. अपनों के बेगाने होने के दंश को झेल रही है. पर यह स्त्री बाकी लोगों और उनके समुदायों की तकलीफ को भी महसूस कर पा रही है. उसके मन में वहां के मुस्लिमों के प्रति नफरत नहीं, बल्कि उनकी मनः स्थिति को समझने का गहरी कोशिश है. बिखरे रिश्तों के तनाव से प्रेम और सामंजस्य के महीन धागों को ढूंढकर सहेजने का प्रयास है, और काल की क्रूरताओं के सामने मजबूती से डटे रहने की हिम्मत भी है. यह संग्रह मुख्यतः कश्मीर में रह रहे हिंदुओं के जीवन की उथलपुथल एवं विस्थापन को चर्चा में लाती है. जड़ों से कटने का दंश पुराने मधुर और आत्मीय संबंधों से सिर्फ धर्म के नाम पर दूरी, खिंचाव, बेगानापन, हर समय सिर पर झूलती मौत का आतंक, या फिर अपना सामान बांधकर पूर्वजों की जमीन छोड़कर विस्थापित होकर नई जगहों में स्वयं को बसाने का प्रयास है. पर मन के उजाड़ पन को कैसे बसाया जाये, यही प्रश्न बार- बार इनके सामने आकर खड़ा हो जा रहा है.

इस संग्रह को पढ़ने के बाद इस बात का अहसास होता है कि कश्मीर की मुस्लिम और हिंदू दोनों औरत के दुख काफी हद तक साझे हैं. रोजमर्रा के जीवन में किसी भी पल सामने आ जाने वाले सदमे, हिंसा की भरमार, चारों तरफ रक्तपात, हर पल अनिश्चितता का भय, असुरक्षित जीवन, भविष्य के प्रति असुरक्षा बोध, बच्चों के ऊपर इस हिंसा का पड़ने वाला प्रभाव, जीवन की राह का ही खो जाना, यौन हिंसा, भयानक बेचैनी, मानसिक अवसाद जैसे अनुभव साझे हैं. कुछ अनुभव अलग भी हैं जैसे कि मुस्लिम स्त्रियों में परिवारी सदस्यों के गायब हो जाने, आधी विधवाओं के रूप में जीवन गुजारने, यौन हिंसा के शिकार होने के उदाहरण काफी मिलते हैं. जबकि हिंदू स्त्रियों में विस्थापन के बाद जीवन की अस्तव्यस्तता, अपनी जड़ों अपने समुदाय, संस्कृति से अलग हो जाने, अल्पसंख्यक होने और खुद को एक घेटो में सीमित कर अपमान और भय से जीवन गुजारने के अनगिनत सच हमारे सामने खड़े हैं.

पत्थर और धात का जमाना ,विषाद योग, यातना कक्ष कहानियों में कश्मीर में फैले तनाव और उसमें रह रहे हिंदुओं की छिन्न भिन्न मानसिक स्थिति को सामने लाया गया है. सदियों से साथ रहते चले आये हिंदू मुस्लिम जिनके आपसी संबंध बेहद मजबूत और दोस्ताना रहे हैं. वे कैसे अविश्वास की आंधी में जड़ों से हिलते या कहें कि उखड़ते जा रहे हैं. पुरानी दोस्तियां संदेह के घेरों में आ रहीं हैं. हिंदू शिक्षक अपने मुस्लिम विद्यार्थियों से खौफ खाने लगे हैं कि कब डांटने भर से वे उनकी जान के दुश्मन बन जायें माइनॉरिटी गांठ मजबूत हो रही है. वस्त्रों और विचारों से आधुनिक जीवन जी रहे मुस्लिम अब और ज्यादा अपने मजहबी खोल में बंद होते जा रहे हैं क्योंकि यहां खतरा सिर्फ हिंदुओं को ही नहींबल्कि मुस्लिमों को भी है, जो खुद को अपने मजहबी ढांचे में सीमित नहीं रखना चाहते मुस्लिम जैसा न दिखने पर उनकी जान भी खतरे में पड़ सकती है. **पत्थर और धात का जमाना** में इतिहास की शिक्षिका इंदु अपनी मुस्लिम सखी को कश्मीर में होने वाले तनाव और रक्तपात के दौरान देखती है, तो व्यक्ति के भीतर के बदलाव को देखकर स्थितियों का आकलन कर लेती है.

इंदु ने शमीम की तरफ देखा .उसके कंधों तक कटे रेशमी बाल रबर से बंधे थे. दुपट्टा उसने पेशानी तक ला खींचा था. ढीली-ढीली कमीज़ और सलवार कश्मीरी रेशम की साड़ीयों के पीछे पागल रहने वाली शमीम को इस रूप में देखकर वह समझदारी से मुसकुरा दी. शमीम ने उसे मुस्कुराते हुए देखा तो धीरे हंसी, असरार ने कहा वहां साड़ियों को बक्से में बंद करके रख दो वरना मारी जाओगी. हिंदुस्तानी एजेंट के लियेतो एक ठांय ही काफी है. सो खालिस मुसलमान औरत बनकर घर से निकली हूं.

इस अस्थिरता के आलम में संबंधों में भी अस्थिरता का दौर सा चल रहा है. जो मुस्लिम हिंदुओं के सबसे प्रिय मित्र हुआ करते थे आज हिंदू उन्हीं से खौफ खा रहे हैंमुस्लिमों के लिये यह स्थितियां

और भी दुखद हैं क्योंकि एक ओर उनकी जन्मभूमि बारूद के हवाले होती जा रही है, वहीं दूसरी ओर उनके अपने प्रिय संबंधों में भी बारूद लग चुकी है क्योंकि उनके तमाम प्यार और अपनेपन के बाद भी उनके हिंदू मित्र उनसे सुरक्षा और भय की एक पतली रेखा को मिटा नहीं पा रहे हैं. कम्यूनिस्ट संगठनों से जुड़े मुस्लिम और हिंदुओं दोनों की ही स्थितियां बहुत नाजुक हैं या तो वे गोली से उड़ा दिये गये हैं या अपनी असहायता उन्हें धीरे-धीरे एक गहरे मानसिक अवसाद में धकेलती जा रही है, जो उन्हें एक जिंदा लाश बना दे रहा है.

विषाद योग कहानी में कुरैशी जो कि कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े थे को गोली मार दी जाती है और मौत के भय से ही उनके गहरे दोस्त ने न केवल अपने घर से मार्क्स- एंगल्स की तस्वीरें निकलवा देते हैं वहीं वह कुरैशी सहब से किसी भी तरह की दोस्ती को भी नहीं स्वीकारते .लेकिन यह असुरक्षा उन्हें धीरे-धीरे मानसिक विक्षिप्तता की स्थिति में पहुंचा देती है और बीमारी का घुन शरीर में लग जाता है. यह संग्रह सैनिकों के ऊपर हर समय मंडराते खतरे, असमय मौत के दर्द को भी सामने लाता है. तमाम हिंदू मुस्लिमइन सैनिकों में अपने भाई, बेटे को देखते हैं और उनकी सुरक्षा को लेकर बेचैन रहते हैं.विषाद योग कहानी में हम एक मुस्लिम व्यक्ति की सैनिकों के लिये चिंता देखते हैं.

इसकी आंखें सुहेल से कितनी मिलती हैं, शब्बीर कहताहै. सुहेल शब्बीर का बेटा है. चार साल का बातूनी****

कहीं इसे गोली लग गयी तो? शब्बीर उसी नवयुवक को देखते हुए कहता है.

****

मैं घबरा कर उसकी तरफ देखता हूं,फिर उसे डांटने लगता हूं, जब भी सोचोगे, बुरा सोचोगे.(पृष्ठ-55)

वहीं **यातना कक्ष** की कहानी में एक युवा सैनिक जो उनकी सुरक्षा के लिये तैनात था, की मौत के बाद ज्योति अपने भीतर के दर्द को खुद यूं बयां करती है.

यातना में तड़पती मेरी बेटी अंधेरे में चमकती खून की बूंदें मेरी शिथिल बाहों से गिरता उसका शरीर, यह सब इतना भयानक था कि जागने के बाद भी मैं देर तक थरथराती रही थी और आज इस जवान की मौत.

इन कहानियों में कम उम्र के युवा लड़के जो कि सैनिक हैं और कश्मीर की ज्वलंत अग्नि को शांत करने केलिये तैनात किये गये हैं, वे कब उस आग में जलकर खत्म हो जायेंगे किसी को नहीं पता, ड्यूटी पर तैनात सैनिक कब आतंकवादी की गोली का निशाना बनेगा कोई नहीं जानता. दिल को तसल्ली देने के लिये कहा जाता है कि **ये वो लोग हैं,जो दुनिया में अधूरे सफर के लिये ही आते हैं.पर फिर भी इन युवाओं के कटे पेड की तरह गिरने का दर्द वहां के वाशिंदों के लिये सहना मुश्किल हैं. लोग उनमें अपन बच्चे भाई देखते हैं और उसकी मौत पर असहनीय तड़प से भर उठते हैं.**

कश्मीर से आतंकवाद की मारी विस्थापित हिंदू महिलाओं के जीवनयापन और विवाह जैसे मुद्दों को शामिल करती कहानी**शहर-दर-शहर** है. जिसमें विस्थापित परिवारों की लड़कियों के विवाह का महत्वपूर्ण प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है. परिवार अपने घर बार, संपत्ति से बेदखल हो गये हैं. जैसे तैसे जीवन बिता रहे हैं उसमें दहेज का इंतजाम करना बड़ी चुनौती है. दहेज का इंतजाम न हो पाने की खीज भी इन लड़कियों पर मारपीट कर के ही उतरती है.ऐसे परिवारों में लड़कियां परिवार के लिये बोझ बन जाती हैं. 1947 के विभाजन के समय तो लडकियां विस्थापित परिवारों के लिये इतनी बोझ हो गयीं थीं कि उन्हें कुंओं में कूद कर जान देने को विवश किया गया. इस कहानी में बड़ा महत्वपूर्ण प्रसंग आता है, जब लड़की को देखने आया लड़का कहता है कि तुमने एम.ए. पूरा क्यों नहीं किया?, जबकि वह इस बात को जानता है कि वह कश्मीर के तनावों से जूझते बचते बचाते परिवार में रिश्ते की बात कर रहा है. यह बात उस लड़की को बुरी तरह तोड़ देती है,वो कहती है कि

उजड़े हुए लोगों से ऐसे सवाल कि पढाई पूरी क्यों नहीं की? सुजाता दीदी, सच कहती हूं. मेरे पास एक छोटीसी नौकरी होती, मैं थूकती भी नहीं इन लड़कों पर.

लोगों का इन लड़कियों को देखने का नजरिया भी अलग ही होता है. वे इन लोगों को रिफ्यूजी कहते हैं और उनकी लड़कियों पर बदचलनी के आरोप लगाते हैं. कहते हैं कि ये लोग मकानों की तलाश में अपनी जवान बहू-बेटियों को भेजते हैं, मकान मालिक को रिझाने के लिये. रिफ्यूजी परिवारों की बेटियों पर सार्वजनिक संपत्ति की तरह हर व्यक्ति नज़र गडाये रहता है. इस जगह धर्मका विभाजन समाप्त हो जाता है

इस संग्रह की पहली कहानी **आधी नदी का सूरज** एक बहुत ही संवेदनशील मुद्दे को उठाती है. वह है शारीरिकचुनौतियों से जूझ रही एक कश्मीरी औरत परिवेश और उसकी मनःस्थिति. इस कहानी की नायिका शिवानी किशोरावस्था से मिरगी की बीमारी से त्रस्त है. उसे इस बीमारी से जूझते हुए लगभग पच्चीस साल हो चुके हैं. शिवानी के पास विश्वविद्यालय की ऊंची डिग्रियां हैं और एक ऊंचे शिक्षासंस्थान में वह अध्यापन भी करती है, लेकिन उसकी बीमारी उसकी सारी योग्यताओं पर तुषारापात करती नजर आती है. शिवानी हर समय अनायास पड़ने वाले मिर्गी के दौरे से भयभीत रहती है. किसी भी समय वह कहीं भी बेहोश होकर गिर सकती है. उसका चेहरा विकृत हो सकता है. इसी कारण उसका विवाह भी नहीं हो पाता है. उसकी बीमारी के कारण लोग उसके प्रति एक दया की दृष्टि रखते हैं, या डरते हैं. लोगों का इस तरह का व्यवहार उसके भीतर एक हीनता बोध पैदा कर देता है. वह आत्महत्या भी करना चाहती है.पर उसके साथ उसके कुछ बेहद प्रिय मित्र खड़े हैं, जो उसके भीतर इस तरह की नकारात्मक बातों को निकालने के लिये लगातार प्रयास करते रहते हैं. उसे अपने भीतर एक मजबूती मिलती है. इसी मजबूती के कारण ही वह अपने प्रिय मित्र राजेश को काफी खरी-खोटी सुनाती है.जब काफी दिनों की दूरी के बाद राजेश उसे घर के भीतर बुलाकर गले लगाने का आग्रह करता है, तो वह कहती है कि **मैं दोस्तों को बंद कमरे में गले नहीं लगाती**. कहानी के अंत में शिवानी को दुनिया बहुत खूबसूरत प्रतीत होती है क्योंकि वहां अभी भी उससे प्यार करने वाले, सम्मान करने वाले लोग हैं. उसके भीतर रोशनी का उमड़ता सैलाब है, जिसे वह अपनी भीतर जस्ब कर लेना चाहती है.

संग्रह की शीर्षक कहानी **काठ की मछलियाँ** भी इस संगृह की बेहद महत्वपूर्ण कहानी है, जिसमें मल्लाह परिवार की एक लड़की शैलजा के जीवन में एक बेहतर दोस्त की हैसियत से प्रवेश करने वाले एक विवाहित पुरुष के स्वयं को उस लड़की के जीवन में प्रेमी के रूप में स्थापित करने के प्रयास और सफल न हो पाने पर उससे दोस्ती या किसी भी तरह का सामान्य रिश्ता न रख उससे छोड़कर दूर हो जाने की कथा है. यह कहानी हमें कई सारी बातों पर सोचने को मजबूर करती है. सबसे पहली बात कि क्या स्त्री पुरुष के बीच मित्रता जैसे किसी संबंध

की कोई संभावना है कि नहीं, या फिर स्त्री पुरुष की मित्रता की परिणति शारीरिक निकटता ही है? इस कहानी में प्रेम या दोस्ती से अलग एक स्वार्थ से वशीभूत व्यक्ति दिखाया गया है, जो अपने निहतार्थों के लिये एक शिक्षित और साहित्य प्रेमी लड़की के जीवन में दोस्त बनकर प्रवेश करता है और अपनी मीठी-मीठी बातों से उससे प्रेम होने के दावे करता है. वह यह भी दिखाने की कोशिश करता है कि उसके आकर्षण का आधार उस लड़की की विद्वता है. लेकिन मित्रता की आड़ में वह लगातार उस लड़की के साथ अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने का प्रयास करता है. उसके तमाम प्रेम पत्रों में भेजी गयी प्यार भरी बातों को वह सच मानते हुए वह लड़की उस व्यक्ति का विश्वास तो करती है, पर उसके विवाहित होने और उसकी पत्नी का खयाल करके हमेशा उसके और अपने बीच एक दायरे को रखती है और उससे एक मित्रवत संबंध का निर्वहन करती रहती है. जब उस व्यक्ति को यह यकीन हो जाता है कि यह लड़की उसके मंसूबों को पूरा नहीं होने देगी, तो अपनी पत्नी को उसके सारे पत्र पढने को दे देता है, और माफी मांगता है कि अब वह अपना ध्यान सिर्फ अपनी पत्नी पर ही लगायेगा. उस व्यक्ति की पत्नी शैलजा को बुलाकर कहती है कि आप मेरे पति के जीवन से दूर हो जायें. वह उसे अपनी गृहस्थी और अपने पति की ईमानदार छवि का भी वास्ता देती है. शैलजा को यह घटना भीतर तक तोड़ देती है. उसे हर बार यह अहसास होता है कि उसने तो उस पुरुष की पत्नी का घर बसाये और बचाये रखने के लिये हर संभव प्रयास किया था, पर सारा दोषारोपण उसके सिर पर ही क्यों मढा गया और वह अपने मन के घावों के साथ स्वयं को उन काठ की मछलियों में कैद पाती है, जहां वह एक असुरक्षित जीवन जीने को अभिशप्त है. वह शिक्षित और समझदार होने के बाद भी अपने को उतना ही कमजोर पाती है,जितनी की अन्य काठ की मछलियों में रहने वाली मल्लाहों की लड़कियां, जिनके जीवन में भय, असुरक्षा, हिंसा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है. लेकिनयहीं दोस्ती को एक मजबूत रूप को भी दिखाया जाता है, जहां शैलजा का मित्र प्रताप उसे समझाते हुए कहता है कि इस में उसकी कोई गलती नहीं है क्योंकि मनुष्य कोई भी संबंध विश्वास के आधार पर ही बनाता है. इसी विश्वास पर लोग संबंधों को आगे बढाते हैं.शैलजा को अपनी दोस्त सुरैया की भी याद आती है, जो कहा करती थी कि **स्त्री सनक और बेवकूफी की हद तक भावुक होती है, इसीलिये मर्द उसके साथ खिलवाड़ करता है**. कहानी यहीं से अपने संदेश की तरफ जाती है, शैलजा सुरैया की बात को कभी नहीं स्वीकारती, बल्कि वह मनुष्य के मन की कोमल संवेदनाओं को जगा देती है, जो कि मनुष्यता की अनिवार्यता हैं. धोखा देने वाला व्यक्ति अपने मनुष्यता के स्तर से नीचे गिरता है, बाकी को अपने स्थान से गिरने की कोई आवश्यकता नही है.

एक अन्य कहानी **जलपाखी** पर चर्चा भी अत्यंत आवश्यक है. मल्लाहों के संघर्षरत जीवन पर आधारित यह कहानी मुस्लिम धर्म और जाति के बीच संबंध को भी दर्शाती है. जाति प्रथा हिंदू धर्म की अनिवार्यता है, लेकिन किस तरह इसने भारतीय मुस्लिमों को भी अपने घेरे में ले लिया है. मल्लाह मुस्लिम होने के बावजूद इस धर्म में एक शूद्र या कहें कि अंत्यज का जीवन जीने को विवश हैं. उनका छुआ कोई पानी भी नहीं पाना चाहता.लोग उनकी महिलाओं पर तमाम तरह के भद्दे लांछन लगाते रहते हैं. यह समुदाय बेहद पिछड़ा और अशिक्षित है. हाउस बोट ही इनके घर होते हैं. पूरा जीवन इन्हें इसी लकड़ी की नाव पर असुरक्षा के साथ गुजारना होता है. रात में कभी भी नदी के पानी का बहाव तेज हो जाने पर सोते हुए यह भी नहीं पता चलता कि नाव किस ओर बह गयी है.कई बार पुरानी नाव होने पर लकड़ी के गलने से पूरी नाव के ही पानी में डूबने की नौबत आ जाती है. इस प्रकार कई बार सोते सोते जल समाधि की स्थिति पैदा हो जाती है. ऐसे ही असुरक्षित वातावरण में पले बढे मल्लाह लड़के अख्तर के जीवन संघर्षों पर यह कहानी लिखी गयी है. वह विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्ति के लिये जद्दोजहद कर रहा है, लेकिन उसे तमाम विद्यार्थी हिकारत की नज़र से देखते हैं, उनके परिवार की महिलाओं पर व्यंग्य करते हैं. उसकी पत्नी जब लोगों से सुनती है कि वे ऊंचे खानादान के मुसलमान हैंमल्लाहों के घर चाय नहीं पी सकते, तो बड़ी ही मासूमियत से वह पूछती है कि क्या हम हिंदू हैं? इस तरह के ऊहापोह भरे समाज के जीवन को इस कहानी का केंद्रीय बिंदु बनाया गया है.

इस संग्रह में झेलम या वितस्ता नदी कोएक बड़े प्रतीक के रूप में बार –बार सामने लाया गया है. उसकी गति में कभी बहुत ज़्यादा धीमापन या तूफान, पानी के गंदले भूरे रंग, जैसे उसमें रक्त मिलता जा रहा हो का ज़िक्र आता है. बार- बार पुराने दिनों की याद की जाती है, जब यह नदी कल-कल करके बहती थी, उसका जल स्वच्छ चमकता हुआ था और यह नदी कश्मीर की शान थी.

संग्रह की आखिरी कहानी की नायिका भारत- पाकिस्तान की सीमा से लगे एक बड़े पेड़ को देखती है, जिसकी जड़ें भारत में हैं पर वह भारत के साथ पाकिस्तान को भी अपनी छाया दे रहा है. नायिका इसे प्रकृति के एक संदेश के रूप में लेती है कि, जब प्रकृति सीमाओं की भेद नहीं करती, उसके लिये सब बराबर हैं, तो हम भेद करने वाले कौन होते हैं? यह कहानी संग्रह कश्मीरी हिंदू स्त्री के जीवन में आये बदलावों के साथ- साथ कश्मीर में फैले सौहार्द और प्रेम भरे जीवन के उजड़ने की व्यथा को प्रस्तुत करती है. उजड़े जीवन और संबंधों को बचाने की जद्दोअजहद भी यहां मिलती है.

कश्मीरी स्त्री को संपूर्णता में समझने के लिये कश्मीरी मुस्लिम स्त्री के जीवन से जुड़े लेखन की महती आवश्यकता है. ताकि हम दोनों को मिलाकर कश्मीरी महिलाओं की वास्तविक स्थिति को समझ पायें. क्योंकि मुस्लिम स्त्रियों के जीवन में भी त्रासदी की कोई कमी नहीं है. वे सीधे- सीधे राज्य व्यवस्था की शिकार हैं. अपने परिजनों के लिये सालों से आस लगाये , उनकी आंखें पथरा गयीं हैं. वे लोग जो कश्मीर से बाहर रह रहें हैं ,यह उनकी महती ज़िम्मेदारी बनती है कि इस मुद्दे की जटिलता और गंभीरता के हर पहलू को जाने समझें और कश्मीर के हालत बेहतर होने में अपनी भूमिका भी अदा करें. एक कश्मीरी लड़की ने डॉ. उमा चक्रवर्ती के साथ हुई चर्चा में यही कहा था कि कश्मीर में हालात तब तक न बदलेंगे , जब तक आप लोग(कश्मीर से बाहर रह रहे लोग) न बदलोगे. यहां उसका संकेत बाहरी लोगों के इस मुद्दे को समझने और उसमें सार्थक हस्तक्षेप से है. इसके प्रयास हर प्रकार से करने की ज़रुरत है.

काठ की मछलियां, संजना कौल, यूनीस्टार बुक्स प्राइवेट लिमिटेड 2008

अंबेडकरवादी स्त्री-चिंतन: सामाजिक शोषण के खिलाफ आत्मवृत्तात्मक संघर्ष

श्रीकांत गोपीचंद बोरकर

इस पुस्तक के संपादक डॉ. तेज सिंह दलित साहित्य में एक चर्चित नाम है। महोदय दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत थे। इन्होंने हिन्दी साहित्य जगत के साथ साथ दलित लेखन में भी महत्व पूर्ण योगदान दिया है। ये देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक लेखों के लिए भी जाने जाते है। इनकी अब तक बारह पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है और कुछ शीघ्र प्रकाशित होने वाली है।

अंबेडकारवादी स्त्री-चिंतन यह पुस्तक मुख्यत: दलित स्त्री के प्रस्थापित समाज व्यवस्था में व्याप्त जातिवाद और पितृसत्ता के खिलाफ चल रहे संघर्ष को प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत पुस्तक दो खंडो मे विभाजित है भारतीय समाज में व्याप्त पितृसत्ता को इस पुस्तक के संपादक ब्राम्हणी पितृसत्ता की संज्ञा देते है। यह सही है की कोई भी विमर्श ऐसे ही नहीं शुरू होता है, बल्कि उसके पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य रहते है। आज हिन्दी-साहित्य मे दलित और स्त्री विमर्श के स्वर सुनाई पड़ रहे है तो इसके पीछे सदियों के शोषण का इतिहास है। प्रतरोध की इस आवाज ने उत्पीडन की कहानियों को केंद्र में ला खड़ा किया है।

यह स्पष्ट है की बहुजन-समाज के विभिन्न समुदायों के सामाजिक अनुभव भिन्न है लेकिन पितृसतात्मक स्तर पर होने वाले सामाजिक अनुभवों मे कोई अंतर नहीं है। सभी समुदाय की स्त्रियाँ समान रूप से पितृसत्ता से शोषित और पीड़ित है। लेखक यहा स्पष्ट करते है अन्य समाजों की पितृसत्ताएँ केवल जेंडर पर आधारित है जबकि ब्राम्हणी पितृसत्ता की व्यवस्था जाति और जेंडर दोनों पर आधारित है।

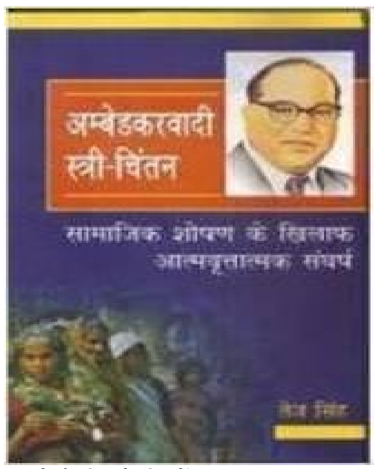

प्रस्तुत पुस्तक अपने संपादकीय लेख के साथ दो खंडो में विभाजित है। अपने संपादकीय लेख में इतिहास को टटोलते हुए वे ब्राम्हणी पितृसत्ता को दुनिया के समाजों की पितृसत्ताओं में सबसे अधिक अमानवीय और विकृत व्यवस्था मानते है जिसने स्त्रियों को सभी मानवीय और जनतान्त्रिक अधिकारों से वंचित कर पुरुष की अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर कर दिया। वे आर्यों की वेद-पुराणों और स्मृतियों पर आधारित समाज व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए उनकी बर्बरता, असभ्यता और संस्कारहीनता को जो असमानता और भेदभाव पर आधारित इस व्यवस्था के स्वरूप को समझाते हुए बताते है की इस व्यवस्था में भी स्त्रियाँ पितृसत्ता का शिकार थी। बौद्ध-काल में स्त्रियों की बेहतर स्थिति पर प्रकाश डालते हुये आगे मनुस्मृति द्वारा ब्राम्हणी पितृसत्ता को संस्थाबद्ध कर एक सामाजिक व्यवस्था के रूप मे स्थापित करने की बात स्पष्ट करते हैं जो आगे बहुजन-समाज और नारियों के उत्पीडन का सबसे बड़ा हथियार बना। इस व्यवस्था ने एकनिष्ठ पत्नी का सूत्र अपनाया। इस एकनिष्ठ परिवार की व्यवस्था ने पितृसत्ता को जन्म दिया इस व्यवस्था में ऊपरी तौर पर देखने से स्त्री संभोग और सहवास के लिए स्वतंत्र लगती थी लेकिन वास्तव में वह पिता या भाई के अधीन ही थी उसकी यौनिकता पर पिता के रूप में पुरुष का अधिकार था क्योंकि अधिकारी पुरुष को उसे किसी भी अन्य पुरुष को संभोग के लिए अर्पित करने का अधिकार था। स्वतन्त्रता वहा होती है जहा समानता का अधिकार हो। लेकिन ऐसा कुछ इस समाज व्यवस्था में संभव नहीं था।

लेखक मनुस्मृति पर महत्वपूर्ण प्रश्न को उठाते है की

- मनु ने स्त्रियों और शूद्रों के लिए इतने कठिन नियम क्यों बनाए?
- क्यों सजातीय विवाह कठोरता से पालन करने के आदेश दिये ?

बौद्ध-काल में स्त्रियों की स्थिति पर बात करते हुए स्पष्ट करते है कि बौद्ध-काल में स्त्रियों को समानता और आजादी जरूर मिली थी लेकिन अपने अधिकारों के प्रति वह संगठित आधुनिक काल में हुई। साथ ही महात्मा फुले और Dr B.R.A. के द्वारा किए गए स्त्री उत्थान और विकास के कार्यों की समीक्षा की।

खंड 1 में स्त्री चिंतन शीर्षक के तहत तीन लेखों को सम्मलित किया है। इन लेखों में धर्म-शास्त्रों की नीति नियमों और उनमें व्याप्त पितृसत्ता को स्त्री के प्रति दोषी मान उनकी भर्त्सना की गई है। पूंजीवाद और मीडिया की गिरफ्त में आई स्त्रियों की स्थिति को उजागर करते हुए वे आज की स्त्रियों के बहुत बड़े वर्ग को इन स्त्रियों से प्रभावित बताती है साथ ही नारी शिक्षा और स्वतन्त्रता में Dr B.R.A डॉ. बीमराव अंबेडकर के योगदान को पेश करती है।

दूसरे और अंतिम खंड में कुल पच्चीस दलित लेखिकाओं के आत्मवृत्तों को सम्मिलित किया गया है। बहुजन-समाज में ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा, समाज में जागरूकता बढ़ी। इस सामाजिक परिवर्तन में स्त्री लेखन भी आकार लेने लगा। बहुजन-समाज की स्त्री अपने परिवार, समाज, लिंग, धर्म और जाति के बारे में क्या सोचती है, क्या विचार करती है, क्या अनुभव करती है, खासतौर से पितृसत्ता के बारे में क्या अनुभव है उन सबको उनके आत्मवृतात्मक संघर्षशील चिंतन में साफ तौर पर देखा जा सकता है जिसकी एक झलक हमे इन आत्मवृत्तों में दिखाई देती है।

दलित साहित्य में स्त्री चिंतन एक विशेष स्थान रखता है। इसकी परंपरा आंबेडकरवादी स्त्री चिंतन की एक लंबी परंपरा में निहित है। दलित स्त्री-लेखन में एक प्रमुख बात यह है की यह मात्र दलित-स्त्री की पीड़ा, दर्द और समस्याओं को ही प्रस्तुत नहीं करता तो यह समाज के विरोध में अपने प्रतिरोध को भी दर्शाता है। भारत में ब्राम्हणी पितृसत्ता के खिलाफ नारी आंदोलन हुये है लेकिन इन सारे आंदोलनों का नेतृत्व सवर्ण वर्ग की संभ्रांत महिलाओं के ही हाथ में रहा है। लेकीन अब स्थिति बदलने लगी है, इधर कई दशकों से बहुजन समाज की स्त्रियों ने अपने नेतृत्व में नारी आंदोलन छेड़े है जिससे नारीवादी आंदोलनों को नई दिशामिली है। इन सब आंदोलनों के प्रेरणा के स्रोत बुद्धफुले-आंबेडकर के विचार रहे है जिन्हें इन लेखिकाओं के आत्मवृत में देखा जा सकता है।

बाँस का पेड़

मेहराज अली

आज सुबह से जाने ये कागा क्यों चिल्लाये जा रहा है। अनवर जब जब गोटी पर निशाना लगाता, कम्बख्त ये कागा बोल पड़ता और उसका निशाना चूक कर दूसरी गोटी पर लग जाता। सफ़ेद कुर्ते और पजामे में अनवर काला हो गया था। दिन भर गाछी और खेत खलिहान में खेलते कूदते उसे पलभर भी एहसास ना हुआ कि कब उसके कपडे भूरे हो गए। शाम हो चली थी, अब वक़्त गोटियाँ खेलने का था। उसके निशानेबाजी के चर्चे तो तीन गांव तक फैले थे। पर आज ये क्या हो रहा था, तीन बार से उसके हाथ का दाँव सफीक ले जा रहा था और अनवर गुस्से की नज़र से कागा को देख रहा था। मानो कह रहा हो "ये सब तेरी वजह से हो रहा है, जाने क्यों तू आज यहीं पर अपना माथा फोड़ रहा है।" अनवर ने मन ही मन निश्चय किया कि अगर अब ये बोला तो इसे छोडूंगा नहीं। अनवर ने ज्यों ही गोटी पर निशाना लगा कर मरने को हाथ उठाया, कि तभी कागा बोल पड़ा। बस, अनवर ने वही गोटी नीचे के बजाये उस कागा को दे मारा। "जे बात!! अब लगा सही निशाना। अब बोल फिर से। कम्बख्त इतने वक़्त से इबलीस की तरह सर पर बैठा था।" हाथ झाड़ते हुए अनवर ने फिर से निशाना साधना शुरू किया, मुट्ठी के कांचों में से सबसे बढ़िया कंचा छांटा, निशाना साधा, साँस अन्दर खींचा, दाहिने हाथ से माथे का पसीना पोंछा। चारो ओर से सभी लड़कों की निगाहें एक तरफ अनवर को देखती तो दूसरी तरफ गोटियों को। सबको लगने लगा था कि इस बार की बाज़ी अनवर ही ले जायेगा। अनवर ने सारा ध्यान लगाकर और गोटी पर निशाना केन्द्रित कर जैसे ही मारने को हाथ उठाया कि तभी...जीप का हॉर्न सुनाई दिया और उसका निशाना फिर चूक गया। निशाना चूकते ही सभी लडको की ज़ुबाँ से अनवर के लिए हमदर्दी का शब्द निकल पड़ा। जीप आता देख कर सारे लड़के उस ओर दौड़ पड़े।

अनवर का यह गाँव बिहार के उस कोने में बसा हुआ था, जहाँ पर शहरी वस्तुएँ तो बस साल में एक आध बार ही दर्शन दिया करती थी। भगवान प्रसन्न हो गए तो मोटर वाहन और रेडियो आदि के दूर से दर्शन हो जाते। और दर्शन भी कोनो गाँव में नहीं, बल्कि लुल्भा चौक पर होते थे। अभी पिछले महीने की बात है बहेरी गाँव में चौधरी जी के बेटे को दहेज़ में साईकिल मिली। पूरा गाँव देखने गया था। अनवर तो पहिया नचा के आया। अब ऐसे में जीप का गाँव के भीतर तक आना, गाँव वालों के लिए किसी स्वप्न से कम न था। पूरा गाँव उस जीप के पीछे पीछे चल रहा था। सभी आपस में खुसर-फुसर कर रहे थे कि आखिर ये लोग हैं कौन? लोहे की गाड़ी में आये हैं तो ज़रूर कोई अमीर होंगे। लेकिन यहाँ इस गाँव में किसके यहाँ आये हैं?

जीप धीरे-धीरे सरकती धूल उड़ाती समीना के दरवाज़े पर आ रुकी। अनवर वहीं खड़ा था। हैरानी भरी नज़रों से वो कभी जीप तो कभी ड्राईवर को देख रहा था। सभी जीप को घेर कर खड़े हो गए। दाहिना दरवाज़ा खुला, ड्राईवर साहब निकले और अंगडाई लेते हुए बोले- "लो जी... जैसा आपने कहा, मैं ले आया।" बाँया दरवाज़ा खुला, धारीदार फिरोजी शर्ट, काली पेंट और पैरों में लम्बा काला जूता पहने एक अधेड़ आयु का व्यक्ति बाहर निकला। उसके निकलते ही दो चार बुज़ुर्ग महिला ने उसे पहचान लिया- "अरे ई तो अलाउद्दीन है। खूब कमा के आया है।"

अलाउद्दीन ने सभी को मुस्कुरा कर सलाम किया। खैरियत जान कर जीप के पीछे का दरवाज़ा खोलने लगा। अब तक अनवर भी इन्हें पहचान चुका था। उसने सलाम किया और समीना को बुलाने के लिए दौड़ा। समीना कमर पर हाथ दिए चश्मा सँभालते हुए ओसारे तक आयी। बहुत वक़्त के बाद उसका बेटा उसे नज़र आया था। उसकी सुर्ख आँखे ज़माने के बाद खुशी से नम हुई थी। समीना ने अलाउद्दीन का चेहरा हसोता, बच्चों की बलाई ली और सभी को घर के अन्दर ले गयी। सानू, लाली, और नूरु के लिए यह अनुभव बिलकुल नया था। वो पहली बार गाँव आये थे। किताबों में पढ़ी हुई और फिल्मों आदि में देखे हुए गाँवों के चित्र व प्रतीकात्मक पात्र उनके समक्ष वास्तविक रूप ले रहे थे। गाँव के सभी बुज़ुर्ग बच्चे वगैरह जीप को घेर कर खड़े थे। कोई उसका बोनट छूता- "अरे ई तो खूबे गरम है।"

कोई इसका पहिया छूता- "अरे ई तो लोहा से नरम है।"

ड्राईवर भी इनसे चुटकी लेने से नहीं चूका और वो भी इनकी खिंचाई करने लगा।

शाम हो गयी थी। सभी नहा धो कर आराम कर रहे थे कि समीना ने खाने के लिए बुला लिया। अनवर झट से खड़ा हुआ और बोला- " खाने का वक़्त हो गया।, चलो भाई "

लाली हैरान हो गयी "इतनी जल्दी? अभी तो सेवेन थर्टी ही हुए हैं।"

अनवर ने अंगडाई लेते हुए कहा ये शहर नहीं है। यहाँ पर तो यही सही समय है खाना खाने का। बल्कि कुछ घरों में तो लोग खा पी कर सो भी गए होंगे।

सभी एक दूसरे को हैरानी भरी नज़रों से देखने लगे। बहरहाल। सभी ने खाना खाया और छत पर बिस्तर बिछा हुआ था, लेट गए। दिन भर का सफ़र काफी थकान भरा रहा।

अगली सुबह चिडियों और कोयल की आवाज़ के साथ जब सूरज की किरणें हमारे चेहरे पर पड़ी, तो गहरी नींद का अँधेरा छंटने लगा। गर्म मौसम के बावजूद उस सुबह आसमान में ठंडेबादलों की परत थी, उसके पीछे छिपकर झाँक रहा सूरज, अपनी किरणों से पृथ्वी को रंगीन कर रहा था। बाँस के ऊँचे-ऊँचे पेड़ जब हवा के प्रवाह से हिलते थे, तो लगता था जैसे कोई दूर बैठा संगीत बजा रहा है। अनवर ने लेटे-लेटे अंगडाई ली और प्रकृति का मनोरम दृश्य देखने लगा। अनवर की मामी के आवाज़ लगाने पर सभी जगे और नहा धो कर नाश्ता करने के बाद खेतों और गाछी की और निकल पड़े। सारा दिन खूब मस्ती की। मगरू पतासी के आम चुराए, भीर पर पोखर से मछलियाँ पकड़ी, बोरिंग के पानी में नहाये, खेत में पैखाना करते रमजानी का लोटा ले कर भागे, कुत्तों से शिकार खेला। दिन

भर की धमाल चौकड़ी के बाद जब अनवर की फ़ौज घर लौटी तो अलाउद्दीन की डांट का मज़ा भी लेना पड़ा। खाना खाने के बाद सभी कल की ही तरह छत पर लेट गए थे। सभी का चेहरा असमान की ओर था। कजियारी काली रात में आसमान में टिमटिमाते तारों का झुण्ड मनमोहक लग रहा था। अनवर तारों के बिन्दुओं को जोड़कर आकृतियाँ बना रहा था। तभी उसे कुछ सुनाई दिया।लाली और सानू आपस में बडबड़ा रही थी-चौबीस, पच्चीस, छब्बीस , एक वो रहा सत्ताईस!"

सानू ने लाली को टोकते हुए कहा- "अरे तूने उसे गिना वो जो चांद की लेफ्ट साइड में है?" "अरे हाँ वो तो मैंने गिना ही नहीं। अट्ठाईस! एक वो रहा उनतीस"

लाली ने गिनती जारी रखी। अनवर उनकी ओर मुड़ा और हँसते हुए बोला – "अरे ये तुम लोग क्या कर रहे हो?"

सानू ने अनवर को गुस्से की नज़र सेदेखा "अंधा हो गया है? रात में तुझे दिखता नहीं क्या? तारे गिन रहे हैं।"

लाली ने भी उसका साथ दिया- "हाँ! और ये हम दिल्ली से ही सोच कर आए थे। हमने वहाँ किताब में पढ़ा था कि गाँव में शहर के मुक़ाबले ज़्यादा तारे होते हैं। आजा तू भी काउंट कर।'

अनवर आश्चर्यजनक भाव से बोला – "अरे तारे भी कोई गिन सकता है भला?"

"तुझे दिख रहा है ना कि हम गिन रहे हैं। हमारी हेल्प करेगा तो बता नहीं तो सो जा, हम खुद गिन लेंगे। सानु ने कड़े तेवर से कहा।

"हाँ वो तो दिख रहा है.... लेकिन..."

" लेकिन? लेकिन क्या"

अनवर सीधा हो कर बैठ गया और बोला- "लेकिन तारे गिनना इतना आसान नहीं है।"

सानू हैरान हो गयी- "अच्छा? वो कैसे? हम तो बड़ी आसानी से गिन रहे हैं।

"सत्तर हो गए यार!" लाली खुश होते हुए बोली।

अनवर समझते हुए बोला – "अरे मेरी दादी कहती है कि जो कोई खुदा को प्यारा हो जाता है वो....."

सानू बीच में ही टोकते हुए बोली- " खुदा को प्यारा..... मतलब?"

"अरे जो मर जाता है, वो ना आसमान में जा कर तारा बन जाता है। अब हर रोज़ हर पल कोई न कोई होता है जो खुदा को प्यारा हो जाता है तो अगर अभी तुम सौ गिनोगी तो थोड़ी देर बाद एक सौ दस हो जायेंगे। अभी पिछले हफ्ते सनीचर को इस्लाम नाना अल्लाह को प्यारे हो गए तो हमने रात में देखा एक तारा असमान में जा रहा था।"

"वो इस्लाम दादा थे? तारे गिनना इतना आसन नहीं है"

चाँद अपनी गति से आगे बढ़ रहा था। उसकी चाल की वजह से जो तारे चाँद की ओट में छिपे थे, वो भी उभर आए। सानु की नज़र आसमान की ओर हुई तो वो दंग रह गयी-" अरे लाली! अनवर ठीक कह रहा है। वो देख चाँद की लेफ्ट साइड में अभी सिर्फ एक ही तारा था और अब तीन है।

"तू सही कह रहा है अनवर। अल्लाह उसे जन्नत में भेजे।" लाली ने कहते हुए करवट बदली और तारे गिनना छोड़ कर सोने लगी। सानू और अनवर भी अपनी-अपनी जगह पर सोने लगे और जल्दी ही उन्हें नींद आ गयी।

रात के करीब डेढ़ या दो बजे होंगे। चाँद भी ठीक सिर के ऊपर था चाँद की हलकी रोशनी में पेड़ों का निचला भाग अधिक अंधकारमय था। हलके फुलके बादलों की आवाजाही, रात के कजियारेपन को और अधिक गाढ़ा करते जा रहे थे। हवा भी औसतन ही चल रही थी। अचानक ही किसी की सिसकने की आवाज़ से अनवर की आँख खुल गयी। वो कोहनी के बल पर उठा और देखा कि नूरु आकाश में किसी चीज़ को देखे जा रहा था और सिसकते जा रहा था।

" अरे नूरु ! क्या हुआ ? तू रो क्यों रहा है ?"

नूरु काफी डरा हुआ था। डरते-हकलाते हुए बोला-

"भाई जान..... मुझे दर लग रहा है !"

अनवर उठकर बैठते हुए बोला – क्यों? तूने कोई सपना देखा क्या?

"नहीं... के... वो... ऊपर देखिये।" – कहते हुए उसने बांस के पेड़ो की ओर इशारा किया। अनवर ने देखा कि वह बांस का पेड़ बाकी पेड़ों के मुकाबले ज्यादा ऊंचा था। समीना नानी का घर भी तीनों ओर से पेड़ों के झुण्ड से घिरा हुआ था। केवल दहलीज़ वाली दिशा की ओर इक्का दुक्का पेड़ थे। बांस के पेड़ों के झुण्ड में वह पेड़ कुछ अजीब लग रहा था।

हल्की चांदनी में गाँव की हर चीज़ काली दिख रही थी। उनकी नज़र उस अँधेरे में भी हर वस्तु में कोई न कोई शक्ल ढूंढ लेती। उस भयावह अँधेरे सन्नाटे में झींगुर की आवाज़ कान में ऐसे पड़ रही थी जैसे कोई कान के पास एक ही सुर में सीटी बजा रहा हो और इतने में उल्लू का बोलना और पास ही की छत पर बिल्ली का रोना हमारी सहनशक्ति और हौसले के बाँध को तोड़ने के लिए काफी था। अब उस वक़्त उस खौफनाक मंजर से रूबरू होने वाला सिर्फ नूरु ही नहीं था। अनवर के दिल में भी डर ने अपना कब्ज़ा जमाना शुरू कर दिया था और अब वो भी भयभीत होने लगा था।

अनवर और नुरु ने एक दूसरे के हाथ पकड़ लिए। दोनों कांपती नज़रों से पेड़ की ओर देखते हुए दुआ कर रहे थे कि कोई तो जागे जो इन्हें इस खौफनाक हालात से बचा सके। नुरु ने तो अल्लाह से कितने सारे वायदे कर लिए, गुनाहों के लिए माफ़ी भी मांग ली। "या अल्लाह हमें बचा लो। मैं अपनी फेवरेट गाड़ी आपको दे दूँगा। बिस्तर पर बाथरूम नहीं करूँगा। अम्मी अब्बू की हर बात मानूंगा। या अल्लाह हमेंबचा लो। बड़ा हो कर नमाज़ भी तो पढूँगा।" अनवर भी उसके साथ था और उसकी हर दुआ में "मैं भी" "मैं भी" के शब्द जोड़ देता।

"सानू!! सानू!! उठ ना यार... प्लीज..." अनवर घबरायी हुई आवाज़ में सानू को जगाने का प्रयास कर रहा था। सानू कच्ची नींद में जागी और अधखुली आँखों को मलते हुए बोली- "क्या हुआ? क्यों परेशान कर रहा है? कितना अच्छा सपना देख रही थी मैं। आसमान.... परियों का देश.... और....." कहते-कहते वो फिर सो गयी। उसे वापस सोता देख कर नूरु ने उसके बाल खींच दिए। दर्द से वो उठ बैठी। "क्या है? क्यों तंग कर रहा है?" अनवर सानू के पास आया और बाँस की तरफ इशारा करते हुए बोला- "ज़रा उस बाँस की तरफ देख कैसा अजीब लग रहा है।"

सानू ने देखा, सभी बाँसो की औसतन ऊँचाई से अधिक ऊँचे इस बाँस के शीर्ष में केवल दो ही डालियाँ थी। जो एक दूसरे के विपरीत थी और बाँस के शीर्ष पर पत्तों का गोल झुरमुट था। वो बाँस का पेड़ ऐसा लग रहा था, मानो खेत में कौवों को भागने के लिए पुतला रखा हो। जिसके दोनों हाथ एक दूसरे के विपरीत दिशा बता रहे हों और शीर्ष में आँख और मुंह छपा मटका हो। लेकिन ये सिर्फ खेत में रखे उस पुतले के समान होता तो बात और थी। ये उस पुतले से कहीं बढ़कर था। जब-जब हवा में तेज़ी आती, वो इनकी ओर झुकता और आवाज़ करते हुए ऊपर हो जाता।

सानू ने जैसे ही ये देखा, उसका सपना, परियाँ, नींद सब हवा हो गए। उसके दिल पर भी डर और घबराहट की काली घटा छाने लगी थी। उसके दिल में भी सहनशक्ति, संयम और साहस का सूरज डूबने लगा था। तभी हवा में तेज़ी हुई और वो बाँस का पेड़ आवाज़ करते हुए तेज़ी से हिलने लगा। बस, फिर क्या था, पेड़ को अपनी ओर आता देख सानू जोर-जोर से चीखने लगी। आवाज़ सुन कर सभी हडबडाते हुए जागे। अनीसा जल्दी से सानू के पास आयी- "क्या हुआ बेटा?" अनीसा सानू का मुंह आँचल से पोंछने लगी। "सानू.... तू चिल्लाई क्यों?"

नुरु भी सरक कर अनीसा के पास आया और उनका हाथ थामते हुए बोला- " अम्मी! उस पेड़ में ना, भूत है। जब-जब हम उसकी ओर देखते हैं, तब-तब वो हमारी ओर चिल्लाते हुए अता है। सुनो-सुनो... अभी बहुत धीरे-धीरे बोल रहा है।"

सलीमा भाभी हँसने लगी और नुरु को समझाते हुए बोली- "यहाँ कोई भूत नहीं है, और ये आवाज़ बाँस के एक दूसरेसे रगड़ने की वजह से आती है"

इन सब बातों को लाली बड़े ध्यान से सुन रही थी और बाँस के शीर्ष को लगातार देखे जा रही थी। शायद वो भी उसमें कोई चेहरा तलाश कर रही थी। कि तभी, कोई उल्लू उड़कर उसी बाँस पर आ बैठा। जिससे बाँस तेज़ी से आवाज़ करते हुए हिलने लगा। तभी लाली, सानू और नुरु तीनों चिल्लाते हुए अनिसा से लिपट गए। अनवर भी सलीमा के पास छिप गया। आवाज़ सुन कर अलाउद्दीन और समीना छत पर आ गए। अनवर की मामी और भाभी दोनों ही हँस रही थी। अलाउद्दीन के पूछने पर भाभी ने सारा माजरा उन्हें बताया। वो भी मुस्कुराए और नीचे चले गए। नूरु, सानू और लाली अलाउद्दीन के संग हो लिए। अनवर ऊपर सलीम भाभी के पास ही रहा और उसी बाँस को देखते-देखते सो गया। बाँस हल्की आवाज़ और हवा के साथ हिलता रहा।

सुबह सूरज की किरणों के पृथ्वी पर आने से पहले ही समीना उठ जाती थी और नमाज़ पढ़ा करती थी। सुबह-सुबह कोयल की मीठी कुहू-कुहू और चिड़ियों की चहचहाहट के साथ प्यार से समीना अनवर को जगाने आयी, तो ऐसा लगा मानो संसार की सारी खुशियाँ आज अनवर के दिल में समा गयी हो। वो मुस्कुराते हुए समीना की गोद में सर रख कर सोने लगा। आज के दिन की यह सुबह जैसे नई सौगात ले कर आई हो।समीना उस बिन माँ के बच्चे का माथा सहलाते हुए मन ही मन कहीं गुम हो गयी।

सुबह नाश्ता करने के बाद सभी छत पर आ गए। अनवर ने अपने साथी शकील और फरीदा को भी बुला लिया था। सभी छत पर एक कतार में दाएँ से बाएँ खड़े हो गए। सानू, फिर नुरु, उसके बाद लाली, फिर शकील और फरीदा। अनवर इस फौज की अगुआही कर रहा था। जो कि अब उस बाँस पर आक्रमण करने वाले थे। बीती रात, भूत का रूप ले कर बच्चों को डराने की कोशिश कर रहा था ये। आज तो निश्चय कर लिया था, बस अब इसे छोड़ना नहीं है। सलीमा भाभी सीढ़ी पर से ही ये सबकुछ देख रही थी। वो चुपके से जा कर समीना और अनीसा को बुला लायी। तीनों छुपकर देखने लगे।अनवर हाथ में बाँस की कमची हिलाते हुए बोला- "मेरे सिपाहियों!! ये जंग मासूम बच्चों और इस हैवान पेड़ के बीच है। कल रात की हर परेशानी का हमें बदल लेना ही होगा। इस हैवान पेड़ ने जाने कितने मासूम बच्चों को डराया होगा, कितने मासूमों की नींदें उड़ाई होंगी, उन्हें परेशान किया होगा। आज उन सभी दोस्तों की परेशानियों और नींदों की शहीदी का बदला लेना है।"

अनीसा ने समीना नानी से कहा- "अरे!! अम्मी, ये बच्चे तो पेड़ काटने की बात कर रहे हैं। अभी ठीक करती हूँ इन्हें।"

समीना ने उनका हाथ पकड़ते हुए कहा- "नहीं अनीसा! उन्हें जो करना है करने दो। आज ये एक पेड़, इन सब को बहुत बड़ा सबक देगा। अपनी परेशानियों से लड़ने के लिए स्वयं पर आत्मनिर्भर होने का सबक।" अनीसा रुक गयी और तीनों फिर से उनकी हरकतों को देखने लगे।

सारी योजना हो चुकी थी। शकील आरी ले आया था। लाली और फरीदा ने रस्सी दोनों ओर से थामी। अनवर रस्सी का किनारा लिए बाँस पर चढ़ गया और उसने रस्सी को बाँस की छीप में फंसा कर सानू की ओर फेंक दिया। तीनों रस्सी खींचने लगे और धीरे-धीरे सबने मिल कर उस बाँस को छत पर लिटा दिया। शकील ने झटपट आरी संभाली और बाँस को दो भागों में बाँट दिया। सभी ने अपना एक पैर बाँस पर रखते हुए अपनी जीत का परचम लहराया। समीना नानी, अनीसा और शकीला तीनों छत पर आ चुके थे। सारे बच्चे सहम गए। अनीसा चेहरे पर सख्ती का भाव लिए उनकी ओर आगे बढ़ी और इस कारनामे के ज़िम्मेदार के बारे में पूछने लगी। अनवर की फौज दगा दे गयी। सानू ने नुरु को, नुरु ने लाली को और लाली, शकील, फरीदा तीनों ने अनवर को ज़िम्मेदार ठहराया। अनवर सर झुकाए अपराधी भाव से खड़ा अपनी गलती का एहसास कर रहा था कि तभी सबकी दबी हँसी फूट पड़ी। नानी, भाभी और मामी को हँसता देख सभी बच्चे भी खिलखिला उठे।

आदित्य सिंह (कक्षा 5, संदिपनी स्कूल, हजारी पहाड़, नागपुर) से साभार

एहसास

जुगल किशोर चौधरी

शहर से कोसों दूर खुली हवा के रास्ते, खुली धूप के नीचे, स्वच्छ चांदनी वाली रातों के नीचे जीता-मरता परिवार। या यों कहें कि मरता-जीता परिवार और इस तरह ऐसे कई परिवार जो अभावों में जी रहे हैं।

इन परिवारों की जिंदगी मानो उस सर्दी के दिनों में उगने वाले सूरज की तरह है, जिनमें गम के बादल हर घडी अपनी बाहें फैलाये रहते हैं।

दुनियां में एक अजीब डरी-सहमी सी जिंदगी, घबराहट के पिंजडे में कैद एक अजीब-सी बेचैनी लिए हुए जिंदगी गुजार रहे परिवारों में से एक है "कालू" का परिवार।

कालू जो दिखने में गोरा, गठीला-बदन, शांत स्वभाव, दिल में आगे बढ़ने की तमन्ना और चेहरे पर एक गहरी भीगी विवशता लिए हुए अपने परिवार की जीविका में लगा हुआ, अपने घर-परिवार से कोसों दूर परदेश में अपने परिवार को अभावों से दूर निकालने में लगा हुआ। कालू मुंबई में एक मजदूर का काम करता है, जब घर वापस आता है तो अपने घर को अपने परिवार के रहने के लायक बनाने में लगा रहता है। कालू ने परदेस की जिंदगी को बहुत करीब से जाना और जिया। अपने जीवन के लिए वो मुंबई में इधर-उधर भटकता रहता, जहाँ भी उसका मालिक कहता वहीं उसे काम करने जाना पड़ता। वह अपने कर्तब्य के प्रति लगनशील होने के कारण अपने समाज के अन्य लोगो की अपेक्षा गाँव में अधिक प्रतिष्ठित था।

कालू के परिवार का हिस्सा उसकी पत्नी फुलबतिया और उसका बेटा लल्लन था। लल्लन जब पैदा हुआ तो कालू परदेश में था और उसकी पत्नी जेठ की तपती दुपहरी में भी तपती रहती थी, और गाँव के ज़मींदारों के खेत में काम करती रहती थी। गाँव की महिलायें बताती है कि लल्लन जब पेट में था तो फुलबतिया ने गरम पानी पी लिया था। फुलबतिया जब खेत में काम कर रही थी तो उसको प्यास लगी थी और उसका गला सूख रहा था। सभी मजदूरों के घर जाने का वक्त हो रहा था लेकिन सब जमींदार की प्रतीक्षा में थे। जब जमींदार आया तो दोपहर की छुट्टी हुई और सब अपने-अपने घर चल दिए। फूलबतिया का गला सूख रहा था तो रास्ते में उसे जमींदार का घर दिखा, और उसके सामने जमींदार की पत्नी उसी को निहार रही थी, वह थोड़ी दयालु प्रवृत्ति की थी। जब उसने फूलबतिया को पहचान लिया तो गाली देते हुए बोली "मरिहे का तै, आपन नहीं त जऊन पेट मा है वाखर त ख्याल रख"(मरना है क्या तुझे,अपना नहीं तो जो तेरे पेट में है उसका तो ख्याल रख)। फूलबतिया बोली दिद्दा(दीदी) पानी। तब जमींदार की पत्नी ने मटका देखा और बोली "पानी त ख़त्म होइगा"(पानी तो ख़त्म हो गया), हदा या गरम पानी होइगा है घामें मा रखे-रखे(ये गरम पानी है जो धूप में रखा-रखा गरम हो गया है) ।फूलबतिया हाँफते हुए बोली- दैइद्या(दे-दो)। तब गरम पानी पी-कर फूलबतिया की सांसो में साँस पल भर के लिए आ गई। थोड़ी देर बाद घर पहुँचते-पहुँचते जो हालत हुई वो कोई बयां नहीं कर पाता आज भी। और उस रात फूलबतिया को एक प्यार सा लड़का हुआ जिसका नाम रखा लल्लन।

फूलबतिया लल्लन को पाकर सारे दर्द भूल चुकी थी और इस बड़े फल का श्रेय अपने जिंदगी भर के पूजा-पाठ, उपवास आदि को माना।

लल्लन के जन्म की खबर सुनकर कालू भी परदेस से घर आ गया। अब कालू अपनी पत्नी का ख्याल रखता, इस तरह जिंदगी में थोड़ी खुशी आ गई। कालू रात में सोता-सोता अचानक आधी रात को उठ कर बैठ जाता और अपने मासूम से बच्चे और पत्नी फूलबतिया को निहारता रहता। कालू के लिए ये दोनों ही बच्चे थे और इन दोनों के सुखद भविष्य के बारे में कालू सोचता रहता था

कालू अपने बेटे की चिंता ऐसे करता जैसे एक गरीब अपनी पैदा हुई बच्ची की खबर सुनकर। उसके माथे में लड़की की इज्जत और उसके जवान होने पर, उसे गाँव के जमीदारों और ऐसे लोगों की नजरों से बचाकर रखना जो घात लगाये बैठे रहते है हर घडी हर पल। उसके बाद शादी की चिंता फिर उसके सुखी जीवन की चिंता करता

लल्लन अपने माँ-बाप की आँखों का तारा था, लल्लन ज्यों-ज्यों बड़ा हो रहा था उसके अम्मा-बाबू(माँ-बाप) पर उसके बढ़ने की खुशी के साथ-साथ उनके माथे पर एक गंभीर-सी रेखा खिंचती चली जा रही थी । लल्लन अपने माँ-बाप के बुढ़ापे का सहारा और उनकी उम्मीद था।

कालू ने तो अपना बचपन नहीं देखा था, वो बचपन में ही पचपन का हो गया था। कालू अपने बच्चे को वो सब देना चाहता था जो उसे उसकी जिंदगी में नहीं मिला। लल्लन ने अपने दादा-दादी, नाना-नानी किसी को नहीं देखा, वो उसके दुनियाँ में आने से पहले ही चल बसे थे।

लल्लन अब देश की प्रगति और बढती महंगाई के साथ-साथ तेजी से बढ़ रहा था। लल्लन अब स्कूल जाने लायक हो गया था वो बहुत ही चंचल स्वभाव का था और होशियार भी। कालू चाहता था की वो अपने बेटे को इस जातिगत-धर्मगत भेदभाव से दूर रखेगा और लल्लन को एक अच्छा इसमें बनाएगा... पर कालू को शायद पता था कि सरकारी स्कूलों की क्या हालत है इसलिए वह लल्लन को एक प्राइवेट स्कूल में डालना चाहता था। एक दिन प्राइवेट स्कूल में प्रवेश करा देता है। उसने बेटे का प्रवेश स्कूल में कैसे कराया वो वही जानता था। बस कालू एक शुरुआत करना चाहता था अपने साथ जी रहे ऐसे कई परिवारों के लिए जो कभी स्कूल नहीं जा पाए और न ही अपने बच्चो को भेजने के झंझट में पड़े।

लल्लन अब अपने परिवार और समाज का हिस्सा बन गया था और वो भी अपने समाज से कुछ सीख रहा था। लल्लन धीरे-धीरे अपने स्कूल में पहचाना जाने लगा। एक दिन उसकी माँ किसी जमींदार के यहाँ काम करने गई तो जमींदार के लड़के ने फूलबतिया को देख कर पूछा, ये कौन है अम्मी? तो जमींदारनी ने बोला ये लल्लन की अम्मी है। फूलबतिया ये सुन कर गदगद हो गई की आज उसका बेटा उसकी पहचान बन रहा है।

शाम का समय था कालू अपनी बस्ती में बैठा हुआ था तभी लल्लन भागता हुआ आया और बोला "अम्मा बुलाइन ही"(अम्मी बुला रही है)- तो ये सुन कर कालू अपने मित्रों से बोला- लगता है खाना तैयार हो गया है अब चलता हूँ तभी कालू की ऊँगली पकड़कर लल्लन घर की तरफ चला।

कालू अपने ताजमहल में पहुँचकर अपने झोपड़े में घुसा और जाकर अपनी चारपाई में लेट गया जिसे लल्लन सोफा समझकर लेटा करता था। कालू थोड़ी देर लल्लन के साथ खेलता रहा फिर बोला जा लल्लन फ्रिज से पानी ले आ। लल्लन भाग कर गया और मटके के पास जाकर बापू को छेड़ते हुए बोला- बाबू(पापा) एक (ग्लास)गिलास लाऊ एक गिलास। तब कालू बोला हाँ जल्दी ला प्यास लगी है। कालू की पत्नी रोटी सेक रही थी जो पति की बात सुनकर बोली आ जाओ छप्पन भोग तैयार है।

तभी दोनों बाप बेटे उठकर जमीन में बोरी बिछाकर बैठ गए। लल्लन की अम्मा खाना लेकर आई और दोनों खाना खाने लगे। तब थोडा सा खाने के बाद लल्लन बोला अम्मा तू भी खा ले, तब फूलबतिया ने बोला बेटा तू खा ले अभी तुझे इसकी जरुरत है और हमें तेरी। अब जल्दी-जल्दी बड़ा हो जा। ये सुनकर कालू को थोडा अजीब लगा, पर लल्लन को कुछ खबर न थी। तभी लल्लन की अम्मा ने पूछा बेटा बड़ा होकर क्या बनेगा?

लल्लन ने अम्मा-बाबू की तरफ देखा और बोला-"मैं बड़ा होकर डॉक्टर बनूँगा और सबका बुखार ठीक करूंगा।" इतना सुनकर कालू और फूलबतिया भीगी सी मुस्कान लेकर हंसने लगे और फूलबतिया ने लल्लन को सीने से लगा लिया। फिर सिसक-सिसक कर अन्दर ही अंदर रोने लगी।

कालू और फूलबतिया के आँसू और हंसी के पीछे की विवशता उनकी ख़ुशी थी या बेटे की नादानी या उसकी संकल्प भावना को पूरी करने की चाहत।

या जिंदगी का तजुर्बा जो उन दोनों ने अपनी इस आधी जिंदगी में पाया जिया, गरीबी, अत्याचार की कहानी का चित्र, इस दूषित समाज-धर्म के ठेकेदारों की कहानी, प्रशासन की निरंकुशता की कहानी उनके आंसू कह रहे थे या और कुछ?

❀❀

कश्मीरी कहानी

आस्था और उन्माद

कुंदन लाल चौधरी

छत्ताबल, श्रीनगर। 1990 के माघ महीने की एक शाम। पण्डित श्यामलाल चाय पर अपनी बीवी के साथ राय-मशविरे में मशगूल थे। एक रिटायर्ड सरकारी मुलाजिम होने के कारण आजकल वे ज्यादातर घर में ही पाए जाते हैं। कभी न भुलाई जा सकने वाली उस शाम को वे और उनकी बीवी जिस मुद्दे पर चर्चा कर रहे थे, वह आम दिनों जैसा नहीं था, बल्कि उससे कुछ अलग और बेहद अहम था : "क्या हमें अपना घर-बार छोड़ कर देश निकाला ले लेना चाहिए और शरणार्थियों की ज़िंदगी से आमना-सामना करना चाहिए या फिर अपने ही पुरखों के घर में दिन गुजारने चाहिए"।

हालात बहुत ही खराब हैं। आतंकवादियों ने बहुत से बेगुनाह हिंदुओंको मौत के घाट उतार दिया है। वे खासकर हिंदुओं की जवान पीढ़ी पर निशाना साध रहे हैं। हमने बहुत ही अच्छा किया कि सही वक्त अपने बच्चों को घाटी से बाहर भेज दिया। हो सकता है, उन्हें कहीं पनाह मिल जाए! हो सकता है, कुछ वक्त गुजर जाने पर हालात ठीक होते ही वे अपने घर वापस लौट आएँ! अगर हम यहाँ से निकलने की सोचें, तो हमें तो जम्मू या दिल्ली में अपना कोई ऐसा नहीं दीखता, जो थोड़े दिनों का आसरा भी दे सके। हम तो आम लोग हैं, बेकसूर हैं। न हमारा किसी सियासी पार्टी से लेना-देना है और न ही किसी से कोई दुश्मनी। हमने सारी उम्र अपने मुसलमान पड़ोसियों के बीच हँसते-खेलते, सुख-दुख में एक-दूसरे का साथ देते गुजारी है। अब तो वैसे भी हमें दुकान सेकोई चीज लाने के अलावा बाहर जाने की जरूरत नहीं पडती। हमारे नेक पड़ोसियों ने हमेशा हमारा साथ दिया है। हाल ही में जब हमारे बच्चे घाटी छोड़ कर जा रहे थे, तब भी इन भले पड़ोसियों ने बहुत मदद की थी।

इससे पहले कि यह बातचीत किसी फैसले की शक्ल अख्तियार करती, दरवाजे पर दस्तक हुई। पंडित श्यामलाल दरवाजा खोलने के लिए उठे। उन्होंने अभी दरवाजा पूरी तरह खोला भी नहीं था कि उसके एक पल्ले का उनको ऐसा धक्का लगा कि उनकी पगड़ी बरामदे में दूर जा कर गिरी। चमड़े के जैकेट और जींस पहने चार जवान लडके उनके घर में धडधडाते हुए घुस आए। वे बहुत ही बदतमीज और बदसलूक थे। लगता था, वे बहुत ही जल्दी में हैं। श्यामलाल और उनकी बीवी कुछ समझ नहीं पा रहे थे। इससे पहले कि वे कुछ कहते, चारों जवानों ने घर की तलाशी लेनी शुरु कर दी। घर का सारा सामान, फर्नीचर वगैरह उलट-पुलट कर रख दिया। उनमें से एक जवान घर की ऊपरी मंजिल पर तलाशी लेने के लिए जल्दी-जल्दी जीने की सीढियाँ चढ़ने लगा और दूसरे ने अपने जैकेट के भीतर से एक कटार निकाल ली। घर की ऊपरी मंजिल वाले जवान ने अपने साथियों को बताया कि ऊपर कोई नहीं है। इतना सुनते ही इस ग्रुप के सरगना ने कटार श्यामलाल की छाती पर रख कर बेरहमी से गरजते हुए पूछा- "कहाँ हैं तुम्हारे दोनों बेटे?" मारे डर के श्यामलाल की आवाज हलक में ही अटक गई। वे मन ही मन भगवान को याद करने लगे और उसका शुक्रिया भी अदा करने लगे कि दो दिन पहले ही उन्होंने अपने दोनों बेटों को घाटी से बाहर भेज दिया था।

श्यामलाल को ये पल कभी खत्म न होने वाले बेमुद्दत वक्त की तरह महसूस होने लगे।

"बता बे बुड्ढे लोमड़, तुम्हारे दोनों बेटे कहाँ छुपे बैठे हैं" कटार श्यामलाल के सीने के नजदीक आ चुकी थी।

"हमने उन्हें बाहर भेज दिया, शायद वे जम्मू में होंगे", श्यामलाल ने बड़ी मुश्किल से बोलने की हिम्मत जुटाई।

"हूँ, मतलब वे पहले ही भाग खड़े हुए! खैर, वे जहाँ भी होंगे, हम उन्हें ढूँढ निकालेंगे, साले मुखबिर!चलो हमारे साथ, हमें तुमसे पूछताछ करनी है।"

श्यामलाल उनके पैर पकड़ कर फ़रियाद करने लगे, "मुझे माफ करो, मुझे बख्श दो।" उनकी पत्नी भी उनसे अपने पति की जान की भीख माँगने लगी, लेकिन आतंकवादी श्यामलाल को बाजू से पकड़ कर घसीटते हुए घर से बाहर खींचने लगे। वे दर्द के मारे कराहने लगे। आतंकवादियों ने कड़कती आवाज में धमकी दी कि अगर वे इसी तरह शोर मचाएँगे, तो उन्हें वहीं हलाल कर दिया जाएगा। श्यामलाल को यकीन हो गया कि यह सब करने से कोई फायदा नहीं, इसलिए वे आतंकवादियों के साथ चलने को तैयार हो गए। घर से बाहर निकलते वक्त उन्होंने घूम कर बेबस आँखों से अपनी बीवी को देखा। उनकी बीवी ने फर्श से श्यामलाल की पगड़ी उठाई और उनकी तरफ आगे बढ़ाई, ताकि वे उसे अपने सिर पर रख सकें, मगर आतंकवादियों ने पगड़ी उनके हाथ से छीन कर फेंक दी और दरवाजा धडाम से बंद कर दिया। श्यामलाल की बीवी घर में अकेली रोने-धोने लगी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मदद माँगे भी तो किससे? पड़ोसी अपने-अपने झरोखों से यह तमाशा देखते रहे। आतंकवादियों ने श्यामलाल की आँखों पर पट्टी बाँधकर उन्हें एक अंबेसडर में ढकेल दिया। दरवाजा खटाक से बंद हुआ, कार ने रफ्तार पकड़ ली।

तंग गली-कूचों में दाएँ-बाएँ दौड़ते रहने के लगभग पंद्रह मिनट बाद कार एक जगह रुक गई। जब श्यामलाल की आँखों से पट्टी हटी, तो उन्होंने अपने को एक सुनसान जगह पर बेद के दरख्तों के बीच पाया। बेद के पेड़ जैसे एक-दूसरे से उलझ गए थे। आसमान में बादल छाए हुए थे और बेदों में नए कोंपल फूटने लगी थी, मानो वे आने वाले कल के बारे में बेइंतहा आशावान हों। अगवा करनेवाले दहशतगर्दों ने सिगरेट जलायी और मुँह और नाक से धुँआ उगलने लगे। आतंकवादियों का सरगना, जो इन चारों में सबसे लंबा और शायद बड़ा भी था, मुँह से सिगरेट का धुँआ छोड़ते हुए श्यामलाल से पूछताछ करने लगा। उसने एक बार फिर अपनी कटार श्यामलाल की छाती पर रख दी।

"अबे ओ शैतान बुड्ढे, कहाँ छुपा रखा है अपनेदोनो बेटों को? अगर सच बता दोगे, तो छोड़ देंगे, नहीं तो हम तुम्हारे साथ ज्यादती भी कर सकते हैं" सरगना आतंकवादी लालपीला होते हुए बोला। श्यामलाल ने पहली बार उनके चेहरों पर नज़र डाली, वे बीस से पच्चीस साल के बीच थे, छोटे-छोटे बाल और लम्बी-लम्बी दाढ़ी रखे साफ़ कश्मीरी बोल रहे थे।

"मैं ईश्वर की सौगंध खाकर कहता हूँ, वे यहाँ नहीं हैं, मगर मेहरबानी करके मुझे इतना तो बता दीजिए कि उन्होंने ऐसा कौन-सा गुनाह किया है, जोआप लोग मुझसे इस तरह पूछताछ कर रहे हैं।'

सरगना ने उनके मुँह पर एक जोरदार तमाचा रसीद करते हुए जवाब दिया, "अनजान मत बन, साले हिंदुस्तान के जासूस, हमें खबर है कि तुम सारे कश्मीरी हिंदू मिलिटरी और पुलिस के साथ मिले हुए हो, तुम सब के सब मुखबिर हो और हमारी सारी ख़बरें उन तक पहुँचा देते हो, तुम सब जेहाद के दुश्मन हो।'

"मगर हम तो आपको जानते तक नहीं, हम कैसे आपकी मुख़बिरी कर सकते हैं? वैसे भी तुम लोग अच्छे घरों के लगते हो, नौजवान हो, इस वक्त तुम लोगों को स्कूल या कॉलेज में होना चाहिए था, न कि इस तरह बुजुर्गों के साथ बदतमीजी करते, उन्हें कटार दिखाते, उन्हें घसीटकर घर से बाहर खींचते हुए यहाँ" श्यामलाल ने उन नौजवान आतंकवादियों को समझाने की कोशिश की।

"साले बुड्ढे लोमड़, बहुत जल्द तुम हमें जानने लग जाओगे, हमें मालूम है कि तुम्हारे बेटे यहीं हैं, क्योंकि अभी कुछ दिन पहले उन्हें यहाँ देखा गया है।"

"हाँ चार दिन पहले वे यहीं थे, मैं अपने मान की सौगंध खाता हूँ।"

आतंकियों के सरगने ने उनके मुँह पर थूक कर कहा,"जैसे तुम लोगों का कोई मान, इज्जत है!" वह श्यामलाल को यातना देकर बहुत खुश हो रहा था। "तुम्हारे दोनों बेटे छत्ताबल का मंदिर नए सिरे से खुलवाने के लिए नेतागिरी कर रहे थे, तुम लोग मंदिर की जमीन वापस लेने की कोशिश कर रहे हो, जिस पर हमारा हक है" यह बात दूसरे आतंकवादी ने कही। उसका मतलब छत्ताबल के भैरव मंदिर की उस जमीन से था, जिस पर मुहल्ले के मुसलमानों ने अपना हक जमा लिया था। उस पर कई साल से झंझट चल रहा था। अदालत के फैसले के चलते मंदिर पर कई साल से ताला लटका हुआ था, न अंदर जाने की इजाजत थी, न पूजा-अर्चना की। वैसे, इस झगड़े का उन दिनों के हालात से कोई वास्ता नहीं था। यह वाकया उस पुराने किस्से की शेरबकरी जैसा था, जिसमें शेर किसी भी बहाने बकरी के मेमने को खाना चाहता था।

"यह तो बहुत पुरानी बात है, मंदिर पर लंबे समय से ताला लगा हुआ है, मेरे बच्चों का न तो मंदिर से कोई लेनादेना है और न आप लोगों के जेहाद से।"

"फिर तुम्हारे लडके जम्मू क्यों भाग गए?"

"क्योंकि कुछ बेकसूर हिंदू मार डाले गए थे और कुछ को भगा दिया गया था, सो जान के डर से वे भी यहाँ से चले गए।"

यह सुनते ही आतंकवादियोंका गुस्सा सातवें आसमान पर जा चढ़ा। वे अपने जलते सिगरेटों से श्यामलाल को दागने लगे। फिर लात-थप्पड़, जिसके जो जी में आया, उन पर चलाने लगा। थप्पड़ों के हमले से उनका सिर घूमने लगा, उनका सारा बदन दर्द के मारे झनझना रहा था। श्यामलाल उनके पैर पकड़कर माफी माँगने लगे और जार-जार रोते हुए कहने लगे- "न तो हमारा मिलिटरी से कोई लेना-देना है और न ही आपके जेहाद से।"

"जब तुमने अपने बच्चों को यहाँ से भगा दिया, तो खुद यहाँ क्या कर रहे हो? हम लोगों की मुखबिरी!"

"हाँ मुझे अब यहाँ नहीं रहना चाहिए, अगर आप लोग मेरी जान बख्श दो, तो मैं जल्द से जल्द घाटी छोड़कर चला जाऊँगा।" श्यामलाल ने उन्हें विश्वास दिलाने की कोशिश की।

"इससे पहले तुम्हें हमारे कुछ सवालों का जवाब देना होगा, यह बताओ कि तुम्हारे दोनों सपोले जम्मू के किस बिल में छिपे हुए हैं, हम उन्हें बिल से निकालेंगे, उनकी जुबान काट देंगे और उनका जहरीला फन कुचल देंगे।'

"आप लोग मुझ पर विश्वास करें, मुझे नहीं पता कि वे कहाँ हैं, हमारा कोई जान-पहचान वाला या रिश्तेदार भी जम्मू में नहीं है, वे कहीं मंदिर, फुटपाथ या कश्मीरी शरणार्थियों के कैम्प में होंगे।"

"तुम झूठ बोल रहे हो, तुम्हारे लड़के मुखबिर हैं, तुम सारे मुखबिर हो और आर.एस.एस. के मेंबर भी हो। अगर सच-सच बता दोगे, तो हम तुम्हें आसानी से जाने देंगे, नहीं तो सख्त से सख्त सजा देगें। श्यामलाल अपने ऊपर लगाए गए सारे आरोपों का खंडन करते रहे फिर भी आतंकवादियों पर कोई असर नहीं दिखा। उन्होंने उनके कानों पर कई घूँसे मारे और उनकी टाँगों पर लातों से वार करते रहे। वे पीड़ा से तड़प रहे थे, मगर अब रो नहीं रहे थे। कुछ देर बाद आतंकवादियों ने पहले उनका फएरन उतार कर फेंक दिया, फिर बाकी कपड़े फाड़ डाले। श्यामलाल मुँह के बल गिर पड़े।

"हम तुम्हें आखिरी मौका देते हैं', आतंकवादियों के सरगना ने अपनी कड़क आवाज में बोलते हुए श्यामलाल पर एक-दो लातें और जमा दीं। "हमें मालूम है, तुम्हारे बेटे यहीं कहीं छुपे हुए हैं, वे जम्मू नहीं गए हैं, हमें बताओ वे कहाँ हैं, तभी हम तुम्हेंजाने देंगे।'

"अगर तुम लोगों को मुझे मारना ही है, तो मार डालो, मुझे और कुछ नहीं कहना", श्यामलाल ने यह बात बड़े आत्मविश्वास से कही। आतंकवादी उस पर ध्यान न देकर एक बेद के पेड़ के नीचे सलाह-मशविरा करने लगे। इसी बीच श्यामलाल खड़े हो गए और पहली बार दाएँ-बाएँ नजर दौड़ाई। उन्हें लगा, यह जगह उनकी जानी-पहचानी है और यह भी कि वह अपने घर से ज्यादा दूर नहीं गए हैं। झेलम का दरिया उनको सामने नजर आ रहा था। नजदीक ही दरिया के पुल पर पुलिस का बंकर पहरा दे रहा था। मगर इससे श्यामलाल को ज्यादा फर्क महसूस नहीं हुआ, क्योंकि अगर वे आवाज देकर किसी को मदद के लिए बुलाते, तो वह उनकी जिंदगी की आखरी आवाज होती। वे मौत के दहाने पर खडे थे, जहाँ से उन्हें कोई दिव्य शक्ति ही छुटकारा दिला सकती थी।

आतंकवादियों को उनकी तकदीर का फैसला करने में पाँच मिनट लगे। उन्होंने लौटते ही श्यामलाल को सजा-ए-मौत का फरमान सुनाया, "हमें तुम्हारी किसी बात पर यकीन नहीं है, हमारे पास पक्की खबर है कि तुम्हारे दोनों बेटे मुखबिर हैं, तुम सब हमारे दुश्मन से मिले हुए हो और हमारी आजादी की मुहिम को नुकसान पहुँचा रहे हो ऐसे संगीन जुर्म के लिए सजा-ए-मौत ही वाजिब है, जो हम तुम्हें दे सकते हैं' आतंकवादियों के सरगना ने फैसले परआखिरी मुहर लगाते हुए कहा, "हम फैसला करते हैं कि तुमको फाँसी पर लटकाया जाए'

बिना कोई वक्त गंवाए वे अपने इस फैसले पर अमल करने में जुट गए। श्यामलाल ने आखिरी बार उनसे दया की गुहार लगाई, लेकिन तब तक आतंकवादी बेद के पेड़ की एक मजबूत टहनी पर रस्सी लटका चुके थे। उनमें से एक ने गले के नाप का फंदा तैयार किया और उसे गरदन में डालने के लिए श्यामलाल को एक भारी पत्थर पर खड़ा कर दिया।

"भगवान के लिए मुझ पर रहम करो, अगर मैं मर गया तो मेरी घरवाली भी नहीं बचेगी, तुम लोगों पर दो खून का गुनाह चढ़ेगा। क्या तुम लोगों का धर्म यही सिखाता है कि बेगुनाहों का कत्ल करो?

"अबे ओ काफ़िर, हमारा ही मजहब हमें मत समझा" सरगना एक ही साँस में बोल गया।

श्यामलाल हजरत मुहम्मद का हवाला देकर उनसे कहने लगे,"मैं तुम लोगों से फिर कहता हूँ, मुझे दरगाह हजरतबल पर पूरा यकीन है, जहाँ हजरत मुहम्मद का मोए मुकद्दस रखा हुआ है। मैं हर रोज वहाँ सलामी के लिए जाया करता था। बतौर इंजीनियर मैं वहाँ की देखरेख का जिम्मा निभाता रहा हूँ। मुझे पक्का यकीन है कि मोए मुकद्दस मुझ बेकसूर को यहाँ से छुड़ाने की कोई तदबीर निकालेगा।"

श्यामलाल की बात पर कोई ध्यान दिए बगैर वे बोले, "अबे ओ बुड्ढे पंडित, ये सब कहने की बातें हैं, हमारे हिसाब से तुम्हारी सज़ा सिर्फ़ मौत है", यह कहते हुए उन्होंने श्यामलाल के पैरों तले का पत्थर लात से एक तरफ सरका दिया।

मगर यह क्या! श्यामलाल लटकने के बदले रस्सी टूट जाने के कारण धड़ाम से ज़मीन पर आ गिरे। टहनी वापस पेड़ पर अपनी जगह पर तन गई। बेद के पेड़ के पत्ते श्यामलाल पर अपनी ही बारिश करने लगे। वे पलक झपकते खडे हो गए और उनकी तरफ एक नज़र ऐसे दौड़ाई, जैसे कह रहे हों, 'मैंने तुम लोगों से पहले ही कहा था!' उन्होंने अपने कपड़े झाड़े, उन्हें लगा कि वे बिलकुल ठीक हैं। उनका यह हाल देख कर आतंकवादियों को साँप सूँघ गया।

श्यामलाल ने खुद को संभाला। कुदरत का यह करिश्मा देख कर आतंकवादियों से बोले,"अब आप लोगों को यकीन हुआ कि मैंने कोई गुनाह नहीं किया है! मुझे जाने दो, पैगंबर साहब को भी मेरी बेगुनाही मालूम थी, इसीलिए उन्होंने मेरी जान बचाई। मुझे मार कर आप लोग क्यों उनको नाराज करना चाहते हो?" आतंकवादियों की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। फाँसी लगाने के इंतजाम की नाकामी से वे पहले ही खिसियाए हुए थे, अब उन्हें पछतावा हो रहा था कि श्यामलाल की पगड़ी बरामदे में फेंकने के बदले साथ ही क्यों न ले आए, रस्सी की जगह वही काम कर लेती! मगर किसी भी काफ़िर की दलील उन्हें पस्तहिम्मत नहीं कर सकती थी, उसने उन्हें बद्दुआ देने की हिमाकत कैसे की! एक काफ़िर पैगंबर साहब का बंदा कैसे हो सकता है, जिसके नाम पर उन्होंने यह जेहाद शुरू कर रखा है!

श्यामलाल को लगा कि ईश्वर उनको अभी जिंदा रखना चाहता है। आतंकवादियों को लगा कि श्यामलाल का इस तरह बचना कोई खास बात नहीं थी। उन्होंने उन पर कोई ज्यादा ध्यान नहीं दिया, बल्कि यह फैसला किया कि अब श्यामलाल को हर हाल में मरना चाहिए। आतंकवादियों के सरगना ने अपनी कटार से श्यामलाल पर ताबडतोड कई वार किए। बाकी उनके शरीर से फूटती खून की धारा को देख कर आनंद लेने लगे। श्यामलाल बेहोश होकर गिर पडे, उनके शरीर से बहता हुआ खून जमीन पर अजीब-अजीब से अक्स बनाने लगा।

श्यामलाल बेसुध पडे थे। अब वे उनसे अपनी जान की बख़्शीश नहीं माँग रहे थे, बल्कि इस सबको अपने प्रारब्ध का लिखा मान कर चुप थे। उनकी साँसें धीरे-धीरे कम होने लगी थीं, वे एक फटे चिथड़े के समान जमीन पर गिरे हुए थे। उनके मुँह से "ऊँ नमः शिवाय" का वह मंत्र फूट पड़ा, जिससे वे अपनी हर सुबह की शुरुआत करते थे और जिसके सहारे उनके दिन गुजर रहे थे। आतंकवादियों ने उन्हें हिलाया-डुलाया, लाते मारीं, मगर वे ज़मीन पर बेहोश और बेजान पडे रहे। उन्हें लगा कि श्यामलाल मर गए हैं, वे वहाँ से चल दिए।

आसमान पर बादल छितरा रहे थे। ठंडी आग के गोले सा सूरज पहाड़ियों के पीछे छिपने की तैयारी कर रहा था। पेड़ों के साए कंकाल की तरह बहुत दूर तक जमीन पर बिखर गए थे। शाम उतरने लगी थी। परिंदे अपने-अपने घोसलों को लौट रहे थे। इसी बीच श्यामलाल को होश आया, मगर उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि वे ऐसी सुनसान जगह पर कैसे आए? उनकी पत्नी कहाँ है? वे धीरे-धीरे अपनी याददाश्त टटोलने लगे, तब उन्हें याद आया कि वे यमराज के मुँह से बच निकले हैं। उन पर एक ही दिन में दो हमले हुए, अब तो उनमें चलने का सामर्थ्य भी नहीं बचा था, मगर ऐसा होते हुए भी उन्हें लग रहा था कि वे अभी मरने वाले नहीं हैं।

श्यामलाल को अचानक महसूस हुआ कि सामने से कोई आ रहा है। आने वाले का साया उनके मुँह पर पड़ने लगा था। वह सफेद दाढ़ी वाला, गोल टोपी और एरण पहने हुए एक अधेड़ किस्म का आदमी था, जो शायद मसजिद से नमाज पढ़ कर घर लौट रहा था। श्यामलाल को भान हुआ कि ईश्वर ने मनुष्य के रूप में उसकी मदद के लिए एक दूत भेज दिया है। वे कातर भाव से उस अधेड़ से बोले, "अरे भैया, मेहरबानी करके मेरी मदद कीजिए"

अधेड़ ने हैरत से पूछा, "तुमने यह अपना क्या हाल कर रखा है?"

"कुछ लड़कों ने मुझे फाँसी लगाई थी, मगर फंदा ढीला रहने की वजह से रस्सी टूट गई, उसके बाद उन्होंने मुझ पर कटार से हमला किया, मगर अल्लाताला रहमदिल है, इसीलिए उसने तुम्हें मेरी मदद के लिए यहाँ भेजा। एक अच्छे मुसलमान की तरह मेरी सहायता करो, और मुझे मेरी घरवाली के पास ले चलो।' श्यामलाल फिर गश खाकर जमीन पर लुढक गए।

"हाँ-हाँ मैं तुम्हारी मदद जरूर करूगाँ, उनका अधूरा काम पूरा करके" अधेड यह कहते-कहते श्यामलाल को घसीटते हुए दरिया के किनारे तक ले गया और पानी में धकेल दिया। श्यामलाल छपाक से पानी में गिर गए, मगर इस आखिरी हमले ने सचमुच श्यामलाल की जान बचाई। ठंडे पानी से उनके सारे ज़ख़्म साफ़ हो गए और खून बहना बंद हो गया। श्यामलाल को फिर से होश आने लगा, मगर ठंड के मारे उनका सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। धीरे-धीरे उनका होश लौट आया और वे हिम्मत जुटाकर रेंगते-रेंगते पानी से किनारे पर आ गए। वे पानी और कीचड़ से लदफद हो चुके थे, उनके कपड़े भारी हो चले थे। उनकी नजर पुलिस चौकी पर पड़ी, वे एक बार मदद के लिए चिल्लाए और फिर से बेहोश हो गए।

जो बातचीत पंडित श्यामलाल के घर में शाम को शुरू हुई थी, वह उन्हें तीसरे हमले के बाद अस्पताल के बेड पर याद आ रही थी। अब इस बात का फैसला करने की कोई जरूरत नहीं थी कि सुबह पौ फटते ही श्यामलाल अपनी शापित जगह को छोड़कर घाटी से बाहर चले जाएँगे, बशर्ते वे तब तक इस लायक हो जाएँ!

अनुवाद : विजय कुमार कौल

पुनर्लेखन : देवराज

रिपोर्ट

मातृभूमि से जुड़कर गदगद हुए प्रवासी भारतीय

बिमलेश कुमार

सुन्दर सुभूमि भईया भारत के देशवा से मोर प्राण बसे हिन्द खोह रे बटोहिया....... के गीत को चरितार्थ करता नजारा महात्मा गांधी की जन्मभूमि गुजरात के गांधीनगर में देखने को मिला। मौका था. 13वां प्रवासी भारतीय दिवस का। रंग, रूप, वेशभूषा, बोलचाल की भाषा अलग - अलग थी, पर दिल हिन्दुस्तानी था दुनिया के देशों से पधारे लोग भारत को अपना मूल देश हृदय से मान रहे थे।

भारत की विदेशमंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज और विदेश राज्यमंत्री जनरल वी. के. सिंह को हिं भाषा में डायस्पोरा की पुस्तक 'भारतीय डायस्पोरा: विविध आयाम' प्रस्तुत करते डॉ. राजीव रंजन राय, श्री के. के. त्रिपाठी, डॉ. मुन्ना लाल गुप्ता

गांधीनगर का महात्मा मंदिर पूरी तरह से रंग बिरंगी सजावटी दुधिया रोशनी से पट गया था। सबके चेहरे पर चमक व आत्मीय लगाव झलक रहा था हम सभी एक हैं, हम सभी भारतीय है, की आवाज प्रवासी भारतीयों के हृदय में गुंज रही थी गौरतलब है कि 2015 का प्रवासी भारतीय सम्मेलन गांधीनगर में आयोजित (7-9 जनवरी 2015) किया गया जिसमें दुनिया भर से प्रवासी

भारतीयों का आगमन हुआ। कार्यक्रम की शुरूआत युवा सत्र से हुई। इसका उदघाटन सुषमा स्वराज ने किया। उदघाटन सत्र में गुजरात की मुख्यमंत्री आनंदीबेन पटेल, विदेश राज्यमंत्री जनरल वी. के. सिंह समेत कई सम्मानित जन भी उपस्थिति थे। युवा सत्र में श्रीमती स्वराज ने अपना भारत, अपना गौरव की थीम को केन्द्रित करते हुऐ *ट्रिपल सी* से प्रवासी युवाओं को जुड़े रहने का अगाज कियायानि अपने देश से जुड़ने के लिए *कनेक्ट*, देश के संस्कृति पर्व त्योहार को मनाने के लिए *सेलिब्रेट* और देश के लिए योगदान करने के लिए *कंट्रीब्यूट* करने की अपील की।

भारतीय डायस्पोरा की विविध पुस्तकों की प्रदशनी

श्रीमती स्वराज के अनुसार आज भारत की पचास फीसदी अबा दी 25 वर्ष से कम आयु की है जो देश की कार्यरत आबादी का पांचवा हिस्सा है। दुनिया भर में ढाई करोड़ प्रवासी भारतीय हैं इन प्रवासियों से अपनी जड़ों को जानने का आह्वान किया। प्रवासी भारतीय सफलता का अहम उदाहरण है । देश आप लोग को हमेशा अपना समझेगा, चाहे आपके पासपोर्ट का रंग कोई भी हो या नागरिकता किसी भी देश का हो। पूरे विश्व में भारत धड़कता है। युवा सत्र में "भारत को जानो" पर विशेष रूप से चर्चा हुई, जिसमें चिकित्सा आयुर्वेद के जनक चरक के बारे में बताया गया. "भारत को जानो" सत्र के तहत भारत के शून्य सिद्धांत देने वाले आर्यभट्ट कम खर्च में मंगल यान की अंतरिक्ष में भेजने की बात की गयी। इसके साथ ही चर्चा की गयी कि कई भारतीय परंपरागत चीजों को विदेशों में अपनाया गया है, जिसमें योग, संगीत, व्यंजन पर भी चर्चा हुई जो आज दुनिया भर में पसन्द किये जा रहे है।

प्रवासी भारतीय दिवस में महात्मा गांधी अं हिं विश्वविद्यालय, वर्धा के डायस्पोरा अध्ययन , जनसंचार, मनोविज्ञान विभागों के शिक्षकगण और शोधार्थी

8 जनवरी को महात्मा मंदिर में कार्यक्रम का उद्घाटन भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में गुयाना के राष्ट्रपति डोनाल्ड राम औतार थे। कार्यक्रम में सुषमा स्वराज, आंनदी बेन पटेल समेत कई महत्वपूर्ण हस्तियां मौजूद थी । इस सत्र में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में नई सरकार की योजनाओं मेक इन इंडिया,जन-धन योजना, स्वच्छ भारत, स्मार्ट सिटी, डिजीटल भारत, ई-गर्वनेंस में प्रवासी भारतीयों से योगदान देने की अपील की। इस अवसर पर केन्द्रीय युवा मामले व खेल राज्यमंत्री खरवानंद सोनोवाल ने कहा कि भारत को वर्ल्ड लीडर बनाने में प्रवासी भारतीयों का अहम योगदान है।

राज्यों के सत्र में कई प्रदेशों के मुख्यमंत्री भी उपस्थित थे। इस सत्र की अध्यक्षता केन्द्रीय गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह ने की। पंजाब के मुख्यमंत्री ने पंजाबी डायस्पोरा का परिचय देते हुए उनके द्वारा किये गये कार्यों की प्रशंसा करते हुए, पंजाब में निवेश करने के लिए त्वरित सुविधा प्रदान करते हुए, सिंगल विडो के माध्यम से सहयोग करने की बात की।

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने प्रदेश के विकास तथा तीर्थ स्थलों के बारे में परिचय देते हुऐ प्रवासी भारतीयों के द्वारा उद्योग-धन्धे स्थापित करने में विंडो के साथ दरवाजा खोल कर सहयोग देने की बात कही।

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री देवेन्द्र फडनाडिस ने सिंगल विंडो, दरवाजा के साथ दिल खोलकर प्रवासी भारतीयों का सहयोग प्रदान करने की बात कही। आन्ध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू ने अपनी प्रस्तुति के माध्यम से राज्य के विकास का मॉडल दिखाते हुए अपने राज्य में प्रवासी भारतीयों को निवेश करने की अपील की। पार्टनर इन डायस्पोरा, इण्डियन डायस्पोरा आदि पर महात्मा मंदिर के हॉल नं.-2 में गिरमिटिया सत्र का भी आयोजन हुआ। इस सत्र में मारीशस, गुयाना, युनाइटेड किंगडम, खाड़ी देशों से पधारे गणमान्य लोगों ने अपने शुरूआती दिनों के गिरमिटिया स्थिति से लेकर आधुनिक परिदृश्य पर भी चर्चा की।

9 जनवरी को महात्मा मंदिर में कार्यक्रम के समापन सत्र का उदघाटन भारत के उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने किया इस सत्र में दुनिया भर में अपनी मेहनत के दम पर पहचान बनाने वाले भारत मूल के लोगों को विदेश मंत्री सुषमा स्वराज, विदेश राज्य मंत्री वी. के. सिंह, गुजरात की मुख्यमंत्री आनंदी बेन पटेल, हिन्दी फिल्म अभिनेत्री जूही चावला समेत कई सम्मानित सदस्यों की उपस्थिति में भारत के उपराष्ट्रपति के हाथों से प्रवासी भारतीय अवार्ड प्रदान किए गए। रात्रि 7 बजे साबरमती रिवरफ्रन्ट अहमदाबाद में रंगारंग संस्कृति कार्यक्रमों के साथ रात्रिभोज का भी आयोजन हुआ।

इस समारोह में महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय के डायस्पोरा विभाग के प्रभारी अध्यक्ष डॉ. राजीव रंजन राय, सहायक प्रोफेसर डॉ. मुन्ना लाल गुप्ता, साहित्य विभाग के सहायक प्रोफेसर डॉ. उमेश कुमार सिंह, विश्वविद्यालय के परीक्षा प्रभारी श्री कौशल किशोर त्रिपाठी ने भागीदारी की।

गुजरात विश्वविद्यालय के भावना आर्टस कॉलेज की प्राचार्या व अंतराष्ट्रीय कार्यक्रमों की संयोजिका, डॉ.नीरजा अरुण की विशेष रूप से उपस्थिति रही। इस समारोह में छात्र-छात्राओं की भागीदारी कराने में इनका अहम योगदान रहा। डायस्पोरा अध्ययन विभाग के पी.एच.डी. के शोधार्थी प्रज्ञा राऊल, अभिषेक त्रिपाठी, श्रीकांत जायसवाल, नाजिया सईद, एम.फिल के शोधार्थी वैशाली पेंदाम, सारिका जगताप, सविता कोल्हे, कमल कुमार, अम्बुज शुक्ल, ईश शक्ति सिंह, अंशु सिंह अनिल कुमार, बृजेश कुमार सिंह, एम.फिल. मनोविज्ञान के महेश तिवारी एवं संचार एवं मीडिया अध्ययन केंद्र के पी.एच.डी. शोधार्थी धीरेन्द्र राय, एम.फिल. शोधार्थी बिमलेश कुमार ने स्वयंसेवक के रूप में भाग लिया। इस प्रवासी दिवस पर डायस्पोरा से संबंधित पुस्तकों की प्रदर्शनी प्रवासी भारतीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा लगायी गयी। इस प्रवासी भारतीय दिवस के माध्यम से भारत की विदेशमंत्री सुषमा स्वाज, विदेशराज्य मंत्री वी.के. सिंह मॉरीशस के प्रवासी भारतीय जगनाथ प्रसाद विसेशर समेत कई सम्मानित प्रवासी भारतीय से संवाद स्थापित हुआ। भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था समेत कई महत्वपूर्ण अनछूए पहलूओं की जानकारी प्राप्तहुई। 10 जनवरी को (GOPIO) सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें 'भारतीय डायस्पोरा विविध आयाम' पुस्तक का विमोचन भी किया गया। पुस्तक विमोचन समारोह में न्यूजीलैंड के भूतपूर्व गवर्नर जनरल सर आनंद सत्यानंद, गोपियो के प्रेसिडेंट अशोक रामशरण, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रो.ए.डी.एन. वाजपेयी, प्रो संजीव शर्मा, को-ऑर्डिनेटर, स्टडी अब्रोड प्रोग्राम, गुजरात विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर डॉ. नीरजा अरुण, डॉ राजीव रंजन राय, डॉ मुन्ना लाल गुप्ता, डॉ उमेश कुमार सिंह, श्री. के.के. त्रिपाठी सहित कई गणमान्य लोग उपस्थित थे।

सहयात्री

गिरीश्वर मिश्र	कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा,misragirishwar@gmail.com
प्रज्ञा सुरेशराव राऊळ	डायस्पोरा अध्ययन विभाग, pradnyaraul1987@gmail.com
धनजी प्रसाद एवं प्रवीण कुमार पाण्डेय	भाषा विद्यापीठ, dhpr.langtech@gmail.com
शुभांगी महादेव शंभरकर	डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन बौद्ध अध्ययन केंद्र shubhangibuddhism@gmail.com
गजानन निलामे	महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी शांति अध्यन केंद्र, gajanannilame@gmail.com
अरुण प्रताप सिंह	मनोविज्ञान विभाग, jyotiarun13@gmail.com
मदन सोनी	अतिथि लेखक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, madansoni12@gmail.com
ऋषभ कुमार मिश्र	शिक्षा विद्यापीठ, rishabhrkm@gmail.com
सुरजीत कुमार सिंह	डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन बौद्ध अध्ययन केंद्र, urjeetdu@gmail.com
सतीश पावडे	नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग, satish pawade@yahoo.co.in
डी.एन. प्रसाद	अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग] dnpsayal@yahoo.co.in
मुबारक मुल्ला	हिंदी विभाग प्रमुख, स्कूल ऑफ स्कॉलर्स , वर्धा mubarakmulla.786@gmail.com
अनुराग कुमार पाण्डेय	महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी शांति अध्यन केंद्र , anurag.100pandey@gmail.com
मुन्ना लाल गुप्ता	डायस्पोरा अध्ययन विभाग, mlgbharat@gmail.com
अमरेन्द्र कुमार शर्मा	क्षेत्रीय केंद्र इलाहाबाद, amrendrakumarsharma@gmail.com
रेणु कुमारी	स्त्री अध्ययन विभाग, kumariren@gmail.com
रजनीश अंबेडकर	डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर दलित एवं जनजाति अध्ययन केंद्र, rajneesh228@gmail.com
अवंतिका शुक्ला	स्त्री अध्ययन विभाग, avifem@gmail.com
श्रीकांत गोपीचंद बोरकर	स्त्री-अध्ययन विभाग shrikantborkar1@hotmail.com
मेहराज अली	हिन्दी साहित्य विभाग, dr.mehrajali@gmail.com
जुगल किशोर चौधरी	हिन्दी साहित्य विभाग, jugalc@gmail.com
कुंदन लाल चौधरी(अनु.विजय कौल)	प्रौद्योगिकी अध्ययन केंद्र, kaulv2002@yahoo.com
बिमलेश कुमार	संचार एवं मीडिया अध्ययन केंद्र, safalbimpandey@gmail.com

यह प्रयास

विश्वविद्यालय परिवार की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि उसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया जाय। हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि आज यह अभिव्यक्ति मूर्त आकार ले रही है। अध्यापकों, कर्मियों, विद्यार्थियों सहित पूर्व विद्यार्थियों ने बड़ी रुचि से **निमित्त** को संभव बनाया उनके हर तरह के सहयोग के लिए....

विश्वविद्यालय प्रशासन ने रुचि ली और हमें प्रोत्साहन दिया उनके प्रति हार्दिक आभार :

सृजन रस की यह धारा सतत बहती रहे और हम सब इसका आनंद लेते रहेंइसी आकांक्षा के साथ फिर मिलेंगे।

शंभू जोशी, गिरीश चंद्र पाण्डेय